7/87

सोमसी

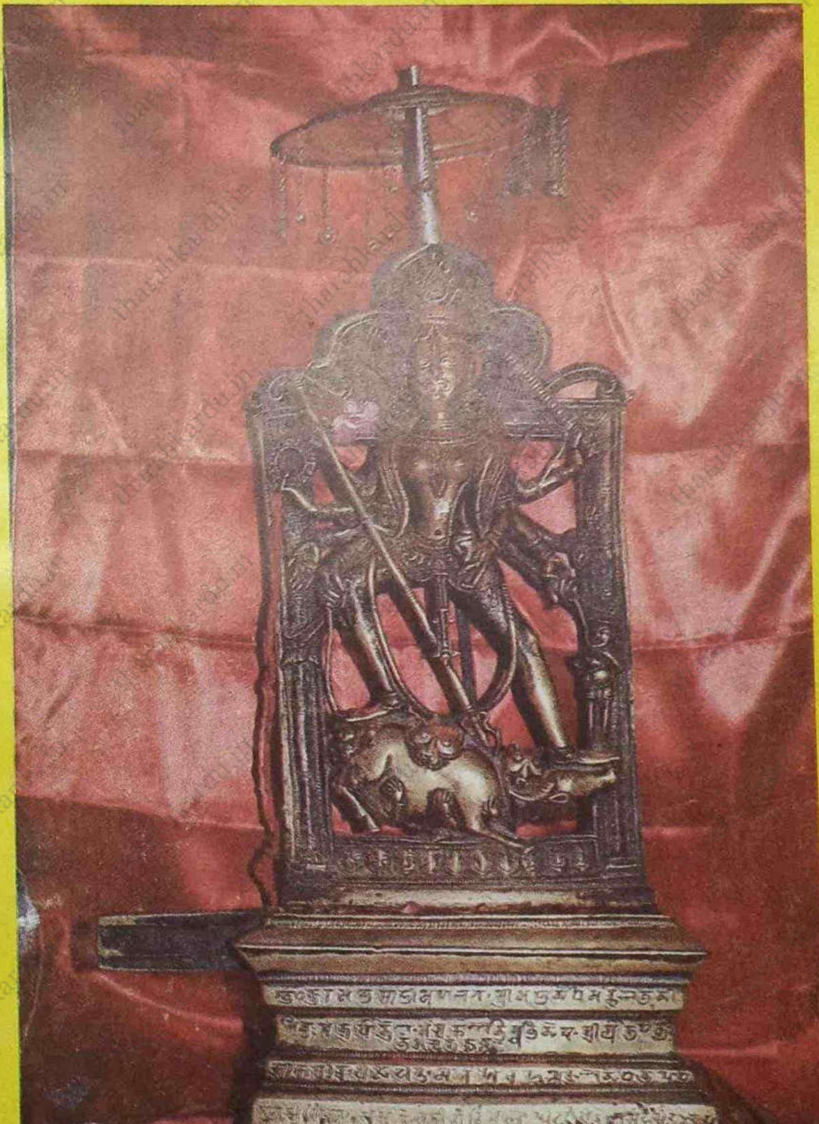

हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी

tharahkardu.in

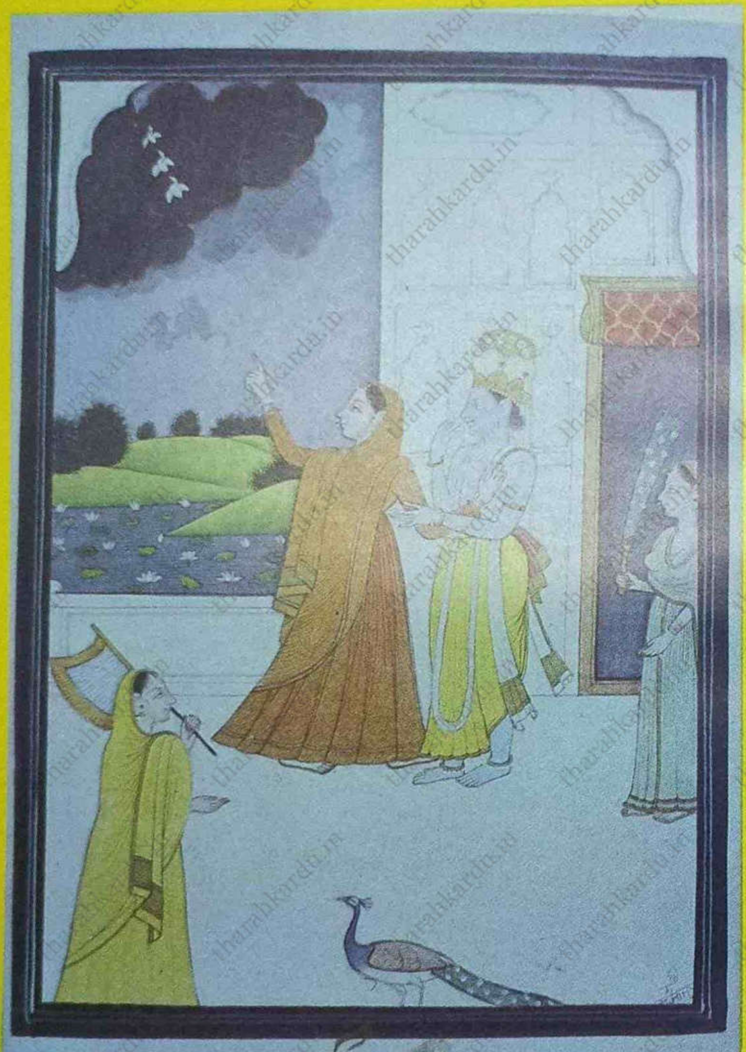

आवरणः—

महिषासुर मर्दिनी मृकुला देवी, उदयपुर (लाहुल)

छाया : हाकम चन्द शर्मा (भाषा-संस्कृति विभाग, हि. प्र.)

ऊपर का चित्रः—

मेघ छटा दर्शन-राधा कृष्ण (कांगड़ा शैली) अनुकृतिः ओम प्रकाश सुजानपुरी

वर्ष : 13 अंक : 3 पूर्णांक : 51
जुलाई, 1987 : आषाढ़-श्रावण 1909 शक : 2044 (वि०)

सोमसी

पर्वतीय कला, संस्कृति और साहित्य की
त्रैमासिक शोध पत्रिका

सम्पादक

डॉ० बंशीराम शर्मा

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी

संगरमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001

tharahkardu.in

सम्पादक : डॉ० बंशीराम शर्मा,
सचिव,
हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी,
शिमला-171 001

त्रैमासिक : जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य

अंक : जुलाई, 1987

सम्पादन-सहयोग : सरोज सांख्यायन

प्रूफ शोधन : निर्मल कौशल

पारदर्शियां : हाकम चन्द शर्मा

वार्षिक मूल्य — 12/-
एक प्रति 3/-

प्राप्ति स्थान : हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी,
संग्रमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट,
शिमला-171 001

विषय सूची

लेख	लेखक	पृष्ठ
कांगड़ा चित्रशैली में रंग विन्यास	हरिश्चन्द्र राय	1
पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी प्रणीत कहानी 'हीरे का हीरा' के पात्र	डॉ० मनोहर लाल	5
निरमण्ड क्षेत्र में प्रचलित वाद्ययन्त्रों के प्रकार	सुरजीत सिंह	9
नाथ सम्प्रदाय में गूगा जहरपीर (वीर)	संसार चन्द प्रभाकर	13
गोरखा सम्प्रदाय में दशहरा उत्सव	मगन पथिक	23
चच्योटी उपभाषा के प्रारूप पर एक दृष्टि	मोतीलाल घई	27
कांगड़ी लोक विश्वास	रमेश चन्द 'मस्ताना'	33
श्री तारा देवी	लक्ष्मण सिंह कश्यप	41
तत्तापानी क्षेत्र में गौओं का प्रसिद्ध त्यौहार—माल	दुनीचन्द शर्मा	51
भगवती मिंधल देवी—एक कथा-यात्रा	प्रो० नरेन्द्र अरुण	57
चिमनू बाबा—एक ऐतिहासिक पुरुष	अमर देव आंगिरस	63
हिमाचली लोक नृत्यों में देव-परम्पराएं	मुरारी शर्मा	66
बिलासपुर के चन्देल राजवंश की कला व साहित्य को देन	श्यामलाल गुप्ता	69
ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सीबा रियासत	डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा	74
हिमाचली लोकगीतों में लामण गायन शैली	डॉ० सुरजीत सिंह पटियाल	77
क्या जालन्धरनाथ हिमाचली थे ?	डॉ० वेद प्रकाश अग्नि	83
चम्बा की बसोआ परम्परा	प्रेम शर्मा	88
हिमाचल प्रदेश के जन समुदाय		94

सम्पादकीय

सोमसी का प्रवेशांक जनवरी, 1975 में प्रकाशित हुआ था। यह पर्वतीय संस्कृति, साहित्य तथा कला को समर्पित शोध पत्रिका है। प्रस्तुत अंक पत्रिका का 51वां अंक है। गत अंकों का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक अंक में इस प्रकार की सामग्री संगृहीत है कि पाठकों को अपने ज्ञानवर्द्धन के लिए कुछ न कुछ अवश्य मिलेगा।

प्रस्तुत अक से पत्रिका अपने नए रूप में मुद्रित हो रही है। इसमें 'कांगड़ा चित्र शैली में रंग विन्यास,' 'पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी प्रणीत कहानी-हीरे का हीरा, 'नाथ सम्प्रदाय में गूगा जहरपीर,' 'गोरखा सम्प्रदाय में दशहरा उत्सव,' 'चच्योटी भाषा का प्रारूप,' 'श्री तारा देवी,' 'गौओं का त्योहार – माल्' आदि कुछ लेख ऐसे हैं जिनमें प्रस्तुत की गई सामग्री नवीन तथा सामयिक है।

अगले अंकों से पत्रिका को अधिक आकर्षक बनाए जाने का प्रयत्न जारी रहेगा और संस्कृति, साहित्य तथा कला से सम्बद्ध विषयों पर विशेषांक भी प्रकाशित किए जाएंगे।

हिमाचल अकादमी प्रदेश की संस्कृति, कला तथा साहित्य के विकास के लिए कृत-संकल्प है। साहित्यसर्जन को बढ़ावा देने के लिए प्रदेश से सम्बन्धित साहित्य तथा हिमाचल के साहित्यकारों द्वारा लिखित पुस्तकों की प्रतिवर्ष खरीद की जाती है तथा साहित्यिक कृतियों पर अकादमी पुरस्कार दिए जाते हैं। इसी प्रकार प्रदेश के कलाकारों की कलाकृतियों की भी प्रतिवर्ष खरीद की जाती है। सांस्कृतिक गतिविधियों को प्रोत्साहन देने के अन्तर्गत इस क्षेत्र के सांस्कृतिक दलों द्वारा विभिन्न स्थानों पर कार्यक्रम प्रस्तुत करवाए जाते हैं।

आज साहित्य के क्षेत्र में नए प्रयोग हो रहे हैं तथा नए आयाम स्थापित किए जा रहे हैं। इसी के मद्देनज़र साहित्यकारों से नए विषयों पर प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने का आग्रह है।

(डॉ०) बंशीराम शर्मा

कांगड़ा चित्र शैली में रंग विन्यास

□ हरिश्चन्द्र राय

अठाहरवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिमाचल प्रदेश का कांगड़ा जिला भारतीय चित्र कला का एक प्रमुख केन्द्र रहा। भारतीय चित्रकला के इतिहास में कांगड़ा शैली का उद्भव और विकास एक अद्भुत घटना है क्योंकि इस से पूर्व कांगड़ा घाटी में कला एवं साहित्य की कोई ऐसी श्रेष्ठ उपलब्धि नहीं दिखाई पड़ती जिस पर विशेष गर्व किया जा सके। मुगल और राजस्थानी चित्र शैलियों की उत्तराधिकारिणी होने के कारण इस शैली में संयोजन, रेखांकन और रंग विन्यास में उन पूर्वजा शैलियों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होते हुए भी इसकी अपनी निजी विशेषताएं ऐसी रही हैं जिसके कारण कांगड़ा शैली विश्व के कला इतिहास में अपना अनूठा स्थान रखती है। इन विशेषताओं में भी जो बात कला रसिकों का ध्यान सर्व प्रथम अपनी ओर आकृष्ट करती है कांगड़ा शैली के चित्रों का रंग विन्यास। भारतीय चित्र षडंग में रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य और सादृश्य के होते हुए भी वर्णिका भंग को ही अन्तिम और प्रमुख स्थान दिया गया है :-

रूप भेदाः प्रमाणानि भाव लावण्ययोजनम्।
सादृश्यं वर्णिकाभङ्ग इति चित्रषडङ्गकम्॥

कारण स्पष्ट है कि तूलिका द्वारा रंगों का समुचित और सुष्ठ विन्यास ही वह प्रमुख प्रक्रिया है जो 'चित्र' की संज्ञा का सार्थक करती है।

कांगड़ा के लघु चित्रों का विषय वस्तु राजाओं महाराजाओं की प्रतिकृतियों के अतिरिक्त पौराणिक गाथाओं (विशेषतः भागवत पुराण), रागमाला और थोड़ी कुछ जन जीवन की झांकी प्रस्तुत करना रही है। इन सभी में रंगों की चमक दमक दर्शाने की बहुत काफी गुंजाइश है। दूसरे कांगड़ा का चित्रकार अपने चारों ओर के स्वच्छ और सुरम्य परिवेश से सुसबद्ध होने के कारण उसकी कल्पना में रंगों की टटकाई सदा ही बनी रहती होगी। तीसरी महत्वपूर्ण बात उस समय की चित्रकला का तकनीकी पहलू है जिस के द्वारा चित्रफलक पर लगाए गए रंगों में और स्वर्णाभूषणों में प्रयुक्त मीनाकारी में जमाए गए रंगों में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता। इसी क्रम

में यह कहना अनावश्यक न होगा कि उन्नीसवीं शताब्दी तक ही भारतीय चित्रकला की विशेषताओं में महत्वपूर्ण स्थान उस प्रयुक्त रंजन सामग्री का भी रहा है जो रंग-बिरंगे खनिजों से कष्टसाध्य प्रक्रिया द्वारा प्राप्त की जाती थी और इतनी पुरानी होते हुए भी आज इस शैली के चित्रों की टटकाई देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानो वे आज ही बनाए गए हों।

आइये, सबसे पहले हम कांगड़ा शैली की चित्रण प्रक्रिया पर विचार करें कि तकनीकी रूप से इन चित्रों में रंग विन्यास किस तरह से होता था। चित्र फलक, जिसे वसली भी कहते हैं, के तैयार करने के लिए बहुत अच्छे प्रकार का हाथ से बना कागज लिया जाता था, जो बहुदा भूरा स्यालकोटी कागज़ होता था। कागज़ पर कागज़ की अनेक तहें चिपका कर चित्रफलक को इतना मोटा बना लिया जाता था कि उस पर जल रंगों और टेम्परा रंगों का तूलिका द्वारा प्रयोग सरलतापूर्वक हो सके। इस फलक पर पहले गेरू के हल्के लाल रंग से रेखांकन करने के बाद उस पर कासगरी सफेदा की पर्त चढ़ाई जाती थी जो ऐसी होती थी कि रेखांकन पीछे से झलकता रहे। चित्रांकन का मुख्य कार्य वरिष्ठ कलाकार द्वारा और उसके चारों ओर के हाशिए का चित्रण कनिष्ठ कलाकारों द्वारा किया जाता था। रंगों में काजल से काला रंग, हिरौंजी और गेरू से लाल रंग तैयार किये जाते थे, परन्तु चटकीले लाल रंग के लिए शंगरफ़ लगाते थे और गहरा लाल रंग लाख से तैयार करते थे। नीला तथा लाजवर्द से नीले रंग बनाते थे। पीले रंगों के लिए प्योड़ी, हड़ताल, मुलतानी मिट्टी और टेसू के फूलों का उपयोग करते थे। हरा रंग तैयार करने में बहुत अधिक कौशल की अपेक्षा रहती थी। जंगार, संग सब्ज, नील और हड़ताल का मिश्रण, काजल और पीले रंग का मिश्रण तथा अन्य अनेक ढंगों से तरह-तरह के हरे रंग तैयार किऐ जाते थे। बैंगनी रंग के लिए शंगरफ़ और नील, या हिरौंजी और काजल के मिश्रण का प्रयोग करते थे परन्तु इन के अतिरिक्त पहाड़ी इलाका होने के कारण कांगड़ा का चित्रकार तरह-तरह की मिट्टियों और पत्थरों की खोज में लगा रहता था जिन से वह अपनी चित्रण प्रक्रिया के उपयुक्त चटकीले और टिकाऊ रंग तैयार कर सकें।

रंगने के लिए अच्छी सामग्री जुटा लेना एक बात है परन्तु भावाभिव्यंजना के लिए उस सामग्री का कौशलपूर्ण प्रयोग करना पर्याप्त अभ्यास और गुरु द्वारा प्रशिक्षण की अपेक्षा रखता है। भावाभिव्यंजना के अनुरुप रेखांकन और रंजन प्रक्रियाबद्ध हो कर भी इस प्रकार से करना कि रंगों की टटकाई और चित्र का ओप बना रहे इस प्रक्रिया में कांगड़ा का चित्रकार सिद्धहस्त था। यही कारण है कि कांगड़ा शैली के चित्रों में यद्यपि चमकदार और मीनाकारी जैसे खिलते हुए रंगों की बहुलता मिलती है परन्तु कहीं भी रंगों की अतिशयता ऐसी नहीं हो पाई है जिस से अपेक्षित भाव दब जाए और रंगों की चटक मटक में से सुसंस्कृत अभिरूचि का ह्रास हो पाए।

सबसे सुन्दर रंग विन्यास के उदाहरण षड्ऋतु और बारामासा के चित्रों में मिलते हैं। वर्षा में मेघों की श्यामलता और भूदृश्य की हरियाली इसी पृष्ठभूमि में यत्र-तत्र चटकीले वस्त्रों

को धारण किए स्त्री और पुरुषों की आकृतियां इस प्रकार से संयोजित हुई हैं कि सावन भादों की वह छटा जो मात्र हमारे पटल पर ही रहती थी, साक्षात चित्ररूप में सामने प्रस्तुत होती है। बसन्त में रंग-बिरंगे फूलों की छटा, नव पल्लवित वृक्षों की लालिमायुक्त हरियाली, घास के सुरम्य मैदान आदि मन को मोह लेते हैं। यही कौशल हमें अन्य ऋतुओं में भी देखने को मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कांगड़ा के चित्रकार का मन सब से अधिक भागवत पुराण में रमा है। कृष्ण लीला का विषय ही ऐसा है। इस संदर्भ में कतिपय चित्रों के उदाहरण से कांगड़ा शैली के रंग विन्यास पर विचार कर लेना भी आवश्यक है। एक चित्र में क्षीर सागर[1] के मध्य विष्णु और लक्ष्मी के समक्ष पृथ्वी रूपी गौ को लेकर ब्रह्मा तथा अन्य अनेक देवता गण प्रार्थना करते दिखाए गए हैं दुग्ध-धवल सागर में जहां एक ओर विष्णु, लक्ष्मी और शेष नाग भी धवलित हो रहें हैं वहां चित्र के दूसरी ओर देवताओं के शरीरों और वस्त्रों के चित्र विचित्र रंग जिनमें नारंगी, गुलाबी और लाल रंग का अति संतुलित प्रयोग हुआ है, अपनी हरी उपत्यकाओं की पृष्ठ-भूमि के साथ जिन में से बांई ओर सागर की दिशा में धौले बादल उठ रहें हैं, उसी मध्य पृथ्वी रूपी गौ को एक दम श्वेत दर्शा कर और उपत्यकाओं के ऊपरी छोरों पर हल्का मटियाला नारंगी रंग झलका कर कलाकार ने एक आलौकिक वातावरण प्रस्तुत कर दिया है।

कृष्ण जन्म[2] के चित्रण में तारों भरी रात के अंधेरे में गोकुल ग्राम के एक कोने में नन्दगृह में प्रविष्ट हो वासुदेव यशोदा के पार्श्व से उसकी नवजात कन्या को कृष्ण से बदल कर ले जाते दिखाए गए हैं। इस चित्र में व्याप्त श्यामल रंग विन्यास स्तब्ध रात्रि की गहन नीरवता और पृष्ठभूमि की अमराइयों में से उमड़ते घने मेघ, साथ-साथ उनके पीछे टलमल करते तारे, सब मिल कर ऐसा सामंजस्य बनाते हैं कि समस्त चित्र कौतूहल के गहन भाव से निमज्जित प्रतीत होता है। इस श्यामलता में पांच स्थलों में थोड़ा-थोड़ा लाल रंग का प्रयोग, विशेषतया नवजात कन्या को लपेटे हुए वस्त्र में चटक हींगुल का प्रयोग harmony और contrast के सिद्धान्त द्वारा रात्रि की गहन श्यामलता को और भी उभार देता है।

गोकुल से वृन्दावन[3] की यात्रा के चित्र में तो रंगों की चित्र विचित्र झांकी देखने को मिलती है। यमुना के किनारे ब्रजभूमि की पीली मिट्टी, किनारे-किनारे कतिपय हरे भरे वृक्ष और उनसे लिपटी बल खाती लताएं, पृष्ठभूमि में भूरे रंग के टीले पर बैठे दो तीतर उस परिवेश की तैयारी करने में सहायक होते हैं जिसकी अग्रभूमि में एक शोभा यात्रा जैसी बनाए नन्द, यशोदा कृष्ण और बलराम सहित सभी ब्रजवासी गौओं, बछड़ों, चरखे, सूप मथानी, बर्तन-भांडे, पोटलियां-पिटारियां आदि लिए वृन्दावन की ओर चले जा रहे हैं। इस नाटकीय दृश्य में रथों के चंढ़ोवों और बैलों पर पड़े आच्छादनों के चटक रंग, यत्र-तत्र स्त्रियों के वस्त्रों के लाल, पीले और हरे रंग समस्त वातावरण को विप्रलम्भ के बावजूद भी रसमय बनाने में सफल सिद्ध हुए हैं। बीच-बीच में बूढ़े लोगों के वस्त्रों और गठरियों में प्रयुक्त काला रंग चित्र के ओप को और भी उभार देता है।

सोमसी/3

कालीय नाग[4] के दमन के चित्र में तो कलाकार ने जिन रंगों का प्रयोग किया है उससे यमुना की प्रचण्डता का तुमुल नाद भी मन के कानों द्वारा सुना जा सकता है जहां वृक्ष से छलांग लगाते कृष्ण प्रखर रंगों में स्पष्टतः अंकित हैं, वहीं जल में निमग्न नाग को नाचते हुए उनकी छटा यमुना की छटा मे विलय होती हुई भूरे रंग के मिश्रण से दिखाई गई है । यमुना की लहरों के ऊपर सफेद झागों के लिए पृष्ठभूमि में श्वेत पुष्पों से लदे हुए वृक्ष के चित्रण से सामंजस्य और संतुलन स्थापित किया गया है । इस समस्त हरे और भूरे वातावरण में गोपियों के वस्त्रों के लाल, पीले, नीले, जामुनी और हरे रंग, उत्साह, भय और आशा के संचारियों को व्यक्त करने में कृतकार्य हुए हैं ।

अग्नि शमन[5] के चित्र में सफेद, काली, भूरी, चितकबरी, पीली और लाल गौओं को लपेटे हुए प्रचण्ड अग्नि और उस में से उठते हुए धूम्र-मेघों के चित्रण में कांगड़ा का चित्रकार उस विभीषिका को दर्शाने में जितना सफल हुआ है उसका अंशमात्र भी दर्शाने में आज की रंगीन फोटोग्राफी बराबरी नहीं कर सकती । वास्तव में चर्मचक्षुओं से देखे गए रंगों में जो निरीहता रहती है उसे भाव प्रवणता और कल्पनाशीलता के अतिरेक से ही वह प्राण-प्रतिष्ठा होती है जिसके कारण महाकवि सूरदास ने अंधे होते हुए भी अपने मनःचक्षुओं से कृष्ण लीला की जो रंग-बिरंगी छटा देखी और वाणी द्वारा दर्शाई कांगड़ा का चित्रकार अपनी तूलिका और रंगों द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत करने में पूर्णतः सफल हुआ है ।

सैट नं० २९, ब्लॉक ३
यू. एस. क्लब, शिमला-171001

चित्रों के सन्दर्भ

1. राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली
2. भारत कला भवन, वाराणसी
3. राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली
4. डोगरा कला वीथि, जम्मू
5. राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली

पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी प्रणीत कहानी 'हीरे का हीरा' के पात्र

□ डॉ० मनोहर लाल

पं० चंद्रधर शर्मा गुलेरी विरचित चौथी कहानी 'हीरे का हीरा' (अपूर्ण) की उपलब्धि हिंदी-कहानी साहित्य के इतिहास-लेखकों के लिए नयी तथा चुनौतीपूर्ण बात है । गुलेरी जी विरचित 'बुद्ध का कांटा' में औपन्यासिक शिल्प के जो लक्षण दिखाई देने लगते हैं वे 'उसने कहा था' के सम्बंध-सूत्रों से जुड़कर 'हीरे का हीरा' में प्रौढ़ि को प्राप्त होते दिखाई देने लगते हैं । डॉ० छोटा राम कुम्हार द्वारा गुलेरी जी के छोटे भाई पं० जगद्धर शर्मा गुलेरी के वंशजों के यहां उपलब्ध गुलेरी जी की साहित्यिक सामग्री में से खोज निकाली यह कहानी 'उसने कहा था' अन्तिम पंक्तियों के सत्य पर प्रश्नचिह्न लगाकर पाठक समुदाय को विस्मित कर देती है । इस कहानी से स्पष्ट हो जाता है कि लहनासिंह जीवित है । उसकी एक टांग हांग-कांग के अस्पताल में काट दी गई थी, वह चीन की लड़ाई में घायल हुआ था । अब उसे लकड़ी की एक टांग लगा दी गई है ।

'हीरे का हीरा' के उपलब्ध आरम्भिक दो पृष्ठों में कहानी के पात्रों का चरित्र-चित्रण आंचलिक परिवेश में विकसित होता दिखाई पड़ता है । पात्र अपने चारित्रिक विकास के आरम्भिक चरण में ही अपना प्रासंगिक परिचय देकर पाठक को उनके बारे में अटकलें लगाने के लिए छोड़ देते हैं ।

'हीरे का हीरा' में दो पुरुष पात्र 'लहनासिंह' और उसका बेटा 'हीरा' और दो स्त्री पात्र-लहनासिंह की मां 'सुखदेई' तथा पत्नी 'गुलाब देई' है । इन स्त्री पात्रों के नाम प्रयोग में गुलेरी जी एक-दो स्थलों पर सुखदेई के लिए गुलाब देई प्रयोग हो गया है जो पढ़ने में खटकता है ।

लहनासिंह : 'उसने कहा था' के अन्त में जिस लहनासिंह को अखबारों ने मृत घोषित कर दिया था, 'हीरे का हीरा' के अनुसार वह मरा नहीं था । वह जीवित है और उसे प्रकट करके गुलेरी ने 'उसने

कहा था' के कथानक को नया मोड़ दे दिया है। 'उसने कहा था' में एक स्थान पर आया है कि वह घर छुट्टी आया है और उसे लाम पर आने का बुलावा आता है। लाम पर जाते समय वह सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी के अनुसार उनके घर से होता गया और सूबेदारनी से मिला था। 'उसने कहा था' में गुलेरी ने लहनासिंह के घर-बार का परिचय पाठकों को नहीं दिया था। 'हीरे का हीरा' का आरंभ लहनासिंह के घर के वस्तुगत चित्रण से ही होता है।

'हीरे का हीरा' में लहनासिंह की एक टांग कट गई है। उसे लकड़ी की टांग लगी है। अपनी इस शारीरिक स्थिति की सूचना के लिए उसने अपनी मां को अम्बाला से चिट्ठी लिखवा दी थी। वह घर पहुंच कर देहरे में रखे दीये के आगे मत्था टेककर, मां के पैर छूता है। उसके मुंह पर गोलियों के तीन निशान स्पष्ट हैं उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है। उसके शरीर पर लाल फीतियां तथा चांदी के तमगे उसकी वीरता की गाथा कह रहे हैं। उसके चेहरे पर श्रम तथा घायलावस्था की छाया छलक रही है। स्याह तथा कुम्हलाए चेहरे पर भी वीरता तथा स्वावलम्बन की झलक स्पष्ट हो रही है। उसका चेहरा स्वाभिमान की ज्योति से दीप्त है 'उसके चेहरे पर गांव पहुंचने तथा परिवार वालों से मिलनेकी उमंग प्रकट है। उसकी छाती पत्नी के उस पर टिके सिर के कारण आंसुओं से भीग-भीग गई है।

गुलाबदेई : यह लहना की पत्नी है। उस प्रेम की पुतली वीर सिपाही की पत्नी ने तीन साल पति के विरह में तप-तप कर बिताए हैं। उसने ये तीन साल पति की प्रतीक्षा में कौए उड़ा कर और पल-पल गिन कर बिताए हैं। उसने पति के आने की उत्सुकता में घर-बार को लीप-पोत कर सजाया संवारा है। चावल के आटे से मंडन मांड कर उसने अपनी लोककला विषयक अभिरुचि व्यक्त की है। गुलाबदेई ने तीन साल का समय पति-वियोग और दरिद्रता में बिताए हैं। पर आज पति के आने के समाचार से उसकी 'आंखों पर फिर कुछ यौवन की ज्योति और हर्ष के लाल डोरे' आ गए हैं। वह बार-बार अपने मानस में अपने स्वस्थ पति के चित्र देखती है। उसके स्मृति पटल पर पति का दो टांगों वाला 'वही रूप उभरता जाता है, जो उसने सदा देखा है।' वह स्मृतियों में खो जाती है। उसके सामने उसका अतीत फिल्म की रील की तरह घूमने लगता है। उसे पास आते लहनासिंह की 'लकड़ी की टांग की प्रत्येक खट-खट मानो छाती में चुभती प्रतीत हो रही थी। उसे अपने प्रेम पात्र से मिलने की स्वाभाविक अनिच्छा और भय मालूम होता है। कारण, वह अपने मन की भीति पर से दो टांगों वाले लहनासिंह की आदर्श मूर्ति के स्थान पर एक टांग वाले लहना को कैसे स्वीकार करे। वह लहनासिंह के पुराने दुर्लभ चित्र में इस तरह खो जाती है कि उसकी 'व्यामोहनिद्रा' तभी खुलती है जब एक जांघ वाला लहनासिंह आंगन में आकर उपस्थित हो जाता है।

गुलाबदेई अपने पति से पुनः मिलकर इतनी अन्तर्मुखी हो जाती है कि उसके मन के भाव शब्द नहीं पा पाते। उसके सारे शरीर में बिजली की धाराएं दौड़ जाती हैं। वह उस क्षण की

प्रतीक्षा नहीं कर पाती कि कब उसे उसके पति अपनी बाहों में समेट कर हृदय से लगाएं । इस संयोग से उसके 'विषाद का अंत' और 'सुख का आरंभ के कारण उसका सिर ही चक्करा दिया और वह लहनासिंह की छाती पर सिर टिकाकर रो पड़ी और रोती ही गई, रोती ही गई ।

गुलाबदेई का चरित्र कुशल गृहिणी, प्रेममयी पतिपरायणा भावुक विरहिणी तथा आर्थिक अभावों में जीवन यापन करने वाली सरल, अनपढ़ भारतीय ग्रामीण महिला के रूप में उभरकर सामने आता है ।

लहनासिंह की मां : लहनासिंह की मां सुखदेई धर्म परायण वृद्ध विधवा है । वह लठिठया टेक कर चल पाती है । तीन वर्ष की कंगाली, पुत्र वियोग और डेढ़ वर्ष की बीमारी ने उसे निचोड़ दिया है । इस दुःखिया की आंखों में कुछ जितनी भी ज्योति बची है, उसे वह बेटे की राह देखने में दरवाज़े पर खड़ी हो कर खर्चती रहती है । वह लहनासिंह की चिट्ठी से-टांग कटने और उसके स्थान पर लकड़ी की टांग लगने के समाचार को पा कर दहल जाती है । वात्सल्यमयी मां इस समाचार को सुनकर चार दिन तक रोटी नहीं खा पाई । उसे भरोसा नहीं होता । वह अपने बेटे लहना को सही सलामत देखने के लिए नाग देवता की मनौती मानती है । नागदेवता को पंच पकवान चढ़ाने गई तो अरदास करने लगी नाग बाबा मेरा बेटा दोनों पैरों चलता हुआ राजी-खुशी मेरे पास आवे, और नाग देवता (सफेद) के दर्शन पाकर उसे पूरा भरोसा हो गया कि उसकी प्रार्थना ग्राम देवता ने सुन ली है ।

देहरे के सामने सिर नभाने के बाद जब लहनासिंह पीठ पर की गठड़ी किनारे रखकर मां के पैर छूता है तो वह वात्सल्यमयी मां-'उसके सिर को अपनी छाती के पास लेकर उस मुख को आंसुओं की वर्षा' से धोती है जिस पर उसे गोलियों के चिह्न दिखाई दिए । और तब मां ने लहना सिंह को खूब देखा । 'उसके सामने लहनासिंह का बचपन और बर्तमान इन शब्दों में मुखर हो उठा अब माता उसको देख सकी ' चेहरे पर दाढ़ी बढ़ी हुई थी और उसके बीच-बीच में तीन घावों के खड्डे थे । बालक पन में जहां सूर्य, चन्द्र, मंगल आदि ग्रहों की कुदृष्टि को बचाने वाला ताम्बे चांदी की पतड़ियों और मूंगे आदि का कठला था वहां अब लाल फीत्ते से चार चांदी के गोल-गोल तमगे लटक रहे थे और जिन टांगों ने बालक पन में माता की रजाई को पचास-पचास दफा उघाड़ दिया उनमें से एक की जगह चमड़े के तसमों से बंधा हुआ डंडा था ।"

लहनासिंह का यह चित्र मां के हृदय की व्यथा को जैसे परत-दर-परत उघाड़ रहा है। लहनासिंह की वात्सल्यमयी मां जब यह देखती है कि उसकी बहु घूंघट डाले, द्वारसाख पर खड़ी हो अपने प्रियतम की बाहों में समाने के चिर प्रतिक्षित मधुर क्षण के लिए मन-ही-मन उमंगों की लहरों में तैर रही है तब वह एक क्षण के लिए भी उन दोनों के बीच दीवार बनना

उचित नहीं समझती। वह रुंधे हुए गले से अपने बेटे से न कुछ पूछ सकी न कह सकी। बस चुप चाप उठकर कुछ सोच-समझकर बाहर चली जाती है।

मां के इस क्रियाकलाप से, उसके प्रेममयी पत्नी के हृदय की व्यथा को समझने की भावना स्पष्ट हैं। मां सहृदया सास है। वह वात्सल्यमयी लोक विश्वासों तथा ग्राम देवताओं में पूरी आस्था रखने वाली शरीर से दुर्बल ग्रामीण के वृद्धा रूप में चित्रित है।

हीरा संभवतः इस कहानी का नायक है। इस अपूर्ण कथानक में उसके चारित्रिक विकास से पाठक परिचित नहीं हो पाता। वह वीर सैनिक लहनासिंह का एक मात्र बेटा है। उम्र सात साल है। लहनासिंह जब लाम पर गया था तब वह चार साल का था।

हीरा का परिचय देते हुए गुलेरी जी ने लिखा है "और सात वर्ष का बालक हीरा, जिसका एक मात्र वस्त्र कुर्त्ता खार से धोकर कल ही उजला कर दिया गया है, कल ही से पड़ोसियों से कहता फिर रहा है कि मेरा चाचा (पिता) आवेगा।"

इस प्रकार इस कहानी के पात्रों का चरित्र अपने प्रथम चरण का ही परिचय करवा पाते हैं। विकास की ओर बढ़ रहे इन पात्रों के चरित्र-चित्रण में गुलेरी जी की कला निखरती दिखाई देती है।

१०८५३, गली नं० ४
सुभाष पार्क शाहदरा, दिल्ली-११००३२

निरमण्ड क्षेत्र में प्रचलित वाद्य यन्त्रों के प्रकार

□ सुरजीत सिंह पटियाल

वादन के माध्यम से निरमण्ड क्षेत्र के वाद्यों को चार भागों में बांटा जा सकता है। तत, अवनद्ध, धन और सुषिर। तत वाद्य वे हैं जिनमें तारों द्वारा स्वरों की उत्पति होती है। इन्हें बजाने के लिए गज या उंगली का प्रयोग किया जाता है। धड़ोटू इसी श्रेणी का वाद्य है। इस क्षेत्र में तत वाद्यों का प्रयोग सामान्यतः गौण ही है। अवनद्ध वाद्य वे हैं जो चमड़े से मढ़े हुए होते हैं और इस चमड़े पर प्रहार करने से ध्वनि उत्पन होती है। अधिकतर ये वाद्य ताल बजाने के काम आते हैं। ढोल, नगारा ढाकुड़ी, ढेंकुली, खांजरी, दराग, ढ़ोलक इसी वर्ग के वाद्य हैं।

जिन वाद्यों में स्वरों की उत्पत्ति लकड़ी अथवा किसी धातु द्वारा होती है वे धन वाद्य कहलाते हैं। चक्का (मंजीरा) भांणा (धातु की थाली) आदि इस श्रेणी के वाद्य हैं। वाद्यों का चौथा प्रकार सुषिर कहलाता है। जिन वाद्यों में वायु के प्रवेश से स्वरों की उत्पत्ति होती है, वे सुषिर-वाद्य कहलाते हैं। बैंशी (बांसुरी सनै (शहनाई) नरशिंगा (नरसिंगा), काहवा, कनराड़ी (करनाल) जैसे वाद्य इसी वर्ग में आते हैं।

(१) तत वाद्य

(क) धड़ोटू : निरमण्ड क्षेत्र में प्रचलित वाद्य यन्त्रों में केवल धड़ोटू वाद्य ऐसा है जो तंतु वाद्यों के के अन्तर्गत आता है। वह वाद्य सारंगी से मिलता जुलता है। इस वाद्य की गायन के साथ संगती की जाती है। इसमें लोहे के चार तार होते हैं जिनको यहां के लोक गायक तुक्के से मिलाते हैं। कभी तारें म़ स स प पर मिली होती है तो कभी प स प सं पर। कहने का तात्पर्य कि इस वाद्य को सुर करने की कोई विशेष विधि नहीं। लोक गायक अपनी सुविधानुसार इन तारों को सुर करता है। इस वाद्य को गज की सहायता से बजाया जाता है। गज में लगे बाल घोड़े की पूंछ के

होते हैं। इन बालों में अधिक घर्षण पैदा करने के लिए चील (चीड़) का बरोज़ा प्रयोग में लाया जाता है।

अवनद्ध वाद्य

(क) ढोल इस वाद्य का आवरण धातु का बना होता है जिसे ध्वनि हेतु भीतर से खोखला रखते हैं। दोनों खोखले सिरों पर बकरे का चमड़ा मढ़ दिया जाता है। इस वाद्य के दोनों सिरों का व्यास एक समान होता है जो डेढ फुट से दो फुट तक होता है, वाद्य के बांयें पूले के हाथ से और दायें पूले को लकड़ी से बजाया जाता है जो आगे से मुड़ी हुई होती है।

(ख) नगारा-दराग ये दोनों वाद्य गोलार्द्ध की आकृति के होते हैं, अन्तर केवल इतना है कि नगारा आकार में छोटा होता है और दराग विशालकाय। जहां तक इनकी बनावट का प्रश्न है इन दोनों वाद्यों की बनावट एक जैसी होती है। "नगारे" के मुख का व्यास एक फुट से डेढ फुट तक होता है, जबकि "दराग" के मुख का व्यास ढाई-तीन फीट का होता है। इनका आवरण तांबा, लोहा, पीतल आदि धातुओं का होता है। इन वाद्यों को बजाने के लिए दो लकड़ियों का प्रयोग किया जाता है।

(ग) ढाकुड़ी, ढँकुली ढाकुड़ी और ढँकुली का आकार लगभग एक जैसा होता है। इनका आकार डमरू सदृश होता है। दोनों वाद्यों में अन्तर यह है कि ढाकुड़ी के दोनों मुखों पर लगे चमड़े को एक बार कस कर बांध लिया जाता है और इस पर लगा चमड़ा मोटा होता है। परन्तु ढँकुली के मुखों पर पतला चमड़ा लगा होता है और जिस रस्सी से दोनों पूलों को ढँकुली के मुखों पर बांधा होता है वह ढीली होती है, जिसे दबा कर लय-ध्वनि की ऊंचता-नीचता का नियन्त्रण सम्भव होता है। वाद्य को बांए हाथ में पकड़ कर पतली सी लकड़ी की सहायता से बजाया जाता है। विशेषकर "छाड़ी" गायन में इस वाद्य का प्रयोग किया जाता है।

(घ) खंजरी इस वाद्य की निमार्ण-विधि सहज है। आठ या नौ इंच व्यास की गोलाकार, तीन-चार इंच चौड़ी लकड़ी से यह बना हुआ होता है, जिसमें एक ओर विशेष प्रकार का चमड़ा लगाते हैं। लकड़ी में तीन या चार स्थलों में छिद्र कर उसमें धातु के बने हुए पतले टुकड़े लगाये जाते हैं। कभी-कभी छोटी घंटियां भी उसमें लगाई जाती हैं।

(च) ढोलक इस वाद्य का आवरण लकड़ी का होता है जिसे ध्वनि हेतु भीतर से खोखला करते हैं। इसके विभिन्न आकार प्रचलित हैं। साधारणतः बंधी में रस्सी का प्रयोग किया जाता है जिसे मध्य स्थित लोहे के छल्लों से कसते है। दोनों ओर समान रूप से चमड़ा लगा रहता है। इसे हाथ से भी वजाते है और लकड़ी से भी।

३. घन वाद्य

(क) चक्का चक्का धातु निर्मित घन वाद्य है। जिसे "छाड़ी" व "नाटारम्भ" जैसे नृत्यों के साथ

बजाया जाता है। इस वाद्य की बनावट मंजीरे जैसी होती है। अन्तर केवल इतना है कि चक्का आकार में मंजीरे से बड़ा होता है। इस वाद्य का आकार गोल रहता है और केन्द्र में छिद्र होता है, जिसमें धागा पिरोकर दोनों हाथों के सहारे इसे बजाते हैं। इसी वाद्य को कई स्थानों पर झांझ के नाम से जाना जाता है।

(ख) **भाणा** यह भी एक विशिष्ट छोटी आकृति का थाली नुमा चन्द्रकार धन वाद्य है। इसका प्रयोग मृदु आनन्दवर्द्धक लयध्वनियों के लिए होता है। बजाने के लिए गोलाकार लकड़ी के टुकड़े का प्रयोग किया जाता है।

४. सुषिर वाद्य

(क) **बैंशी** बासुरी को ही यहां की भाषा में "बैंशी" कहते हैं। बैंशी प्रायः वेणु (बांस) लकड़ी, लोहा, कांसा या पीतल से बनाई जाती है। बांस से बनी बैंशी ध्वनी की धातु की बनी बैंशियों से अधिक गम्भीर एवं मधुर होती है। इसको तिरछी रख कर बजाया जाता है। स्वरों के छिद्र ऊपर के पृष्ठ भाग पर समान अन्तर से बनाये जाते हैं। बैंशी का प्रयोग "छाड़ी" गायन में किया जाता है। ग्वाले लोग भी वन में इस वाद्य का प्रयोग करते हैं।

(ख) **सनै** यह बैंशी जैसा ही सुषिर वर्ग का वाद्य है और प्रायः विवाह आदि मंगल कार्यों पर बजाया जाता है। यह वाद्य एक फुट से डेढ़ फुट तक लम्बा होता है और इसमें साथ छिद्र ऊपर होते हैं और ध्वनि में मधुरता लाने के लिए एक छिद्र नीचे की ओर भी होता है। इस वाद्य का आकार धतूरे के फूल जैसा होता है। "संगीत रत्नाकर" में इससे मिलने जुलने वाले "मधुकरी" नामक वाद्य का सविस्तार विवेचन पाया जाता है[1]। इसी से मिलने जुलने वाला एक "सुनादि" नामक वाद्य का वर्णन पं० अहोबल (ई० १७) ने किया है[2]। "सनै" आकार में शहनाई से छोटी होती है। सनै धातु व लकड़ी से बनाई जाती है। शहनाई से निकले स्वर गम्भीर होते हैं पर सनै से निकले स्वर चंचल और तीखें होते हैं।

(ग) **करनाल** यह सुषिर वाद्य चांदी पीतल या तांबे का बना होता है। इसके दो भाग होते हैं। बजाते समय इन दोनों भागों को आपस में जोड़ दिया जाता है। इस वाद्य का आकार भी धतूरे के फूल जैसा होता है। लम्बाई चार फीट से छः फीट तक होती है। इसके आगे के भाग का व्यास एक फुट के लगभग होता है। इस वाद्य को बजाने पर निम्न स्वर उत्पन होते हैं थों-थों थों कू, थों-थों थों कू थों-थों थों कू थों

(घ) **काहवा** यह वाद्य भी चांदी, पीतल या ताम्बे का बना होता है। इसका आकार मूलतः करनाल से मिलता जुलता ही है। केवल अन्तर इतना है कि इसके आगे के भाग का व्यास तीन-चार इंच से ज्यादा नहीं होता और अगला भाग अन्दर को मुड़ा होता है। इस वाद्य को बजाने का ढंग करनाल से पृथक होता है। जब वाद्य में नीचे की ओर फूंक मारते हैं, तो ध्वनि गहरी और भारीपन

लिए होती है । जब अन्दर को हवा खींचते हैं तो ध्वनि पतली हो जाती है । इस वाद्य से निम्न स्वर प्रतिपादित होते हैं :

थों कीरू-कीरू, थोंम्रा कीरू-कीरू थोंम्रा ।

(च) नरसिंगा इस सुषिर वाद्य का आवरण चांदी, पीतल या तांबे का बना होता है। इस वाद्य के भी दो भाग होते हैं और दोनों भागों को मिलाने के पश्चात इसका आकार अंग्रेजी भाषा के एस(S) जैसा होता है । इस वाद्य से निकली ध्वनि पतली और काफी ऊंची होती है । इसके आगे के भाग का व्यास तीन-चार इंच से ज्यादा नहीं होता ।

काहवा, करनाल और नरसिंगा वाद्यों की यह विशेषता है कि ये वाद्य जब बजाए जाएं तो इनमें से प्रत्येक वाद्य की संख्या कम से कम दो होनी चाहिए ।

खांजरी, चक्का और ढोलक को तथा-कथित स्वर्ण और हरिजन दोनों बजा लेते है । नरसिंगा को केवल स्वर्ण बजाते हैं तथा बाकि के सभी वाद्यों को तथा-कथित हरिजन बजाते हैं स्वर्ण नहीं ।

संगीत विभाग,
हि० प्र० विश्वविद्यालय,
समरहिल, शिमला-171 005

नाथ सम्प्रदाय में गूगा ज़हर पीर (बीर)

□ संसार चन्द प्रभाकर

महाद्वीप एशिया का भारत भू भाग जहां अपनी आध्यत्मिकता के लिए सारे विश्व में अपना विशेष स्थान रखता है वहां भारत वर्ष में हिमाचल प्रदेश को तपो भूमि कहलाने का गौरव सारे संसार में प्राप्त है। हिमाचल प्रदेश का प्रत्येक गांव, प्रत्येक झरना एवं जल कुण्ड नहीं टीला और पर्वत, गुफा, दुर्ग तथा देवस्थल किसी न किसी देव गाथा, पौराणिक गाथा एवं ऐतिहासिक तथ्य को अपने में समेटे मौन साधक की भान्ति मानव ज्ञान की वृद्धि हेतु प्रतिक्षण तत्पर है। जहां भारत वर्ष वीरों, पीरों,फकीरों, सन्तों, अवतारों एवं साधकों की भूमि हैं वहां हिमाचल प्रदेश एक आराधना स्थली के नाम से विख्यात है। समूचे भारत की संस्कृति, देव चमत्कार, मानव संस्कार एवं विभिन्न सम्प्रदायों और आलौकिक शक्तियों की जानकारी साधुओं तथा पीरों, फकीरों की दिव्य करामातों के भण्डार हिमाचल प्रदेश की घाटियों में निहित हैं। समय की झंझा, युग की थपेड़ें तथा भीषण आक्रान्ताओं के रोष भी हिमाचल प्रदेश की संस्कृति के भण्डार को आंच नहीं पहुंचा पाए तभी तो समूचे भारत की संस्कृति हिमाचल प्रदेश के किसी न किसी त्यौहार, मेले एवं मानव संस्कार में प्रतिलक्षित होती है और इस प्रदेश की लोक गाथाएं किसी न किसी महान तथ्य को प्रतिबिम्बित करती हैं।

गुरु गोरख नाथ, नाथ सम्प्रदाय के सशक्त चमत्कारी माने जाते हैं। राजा भर्तृहरि, राजा गोपी चन्द, राजा रसालू, गूगा जहर पीर (बीर), मच्छन्दर नाथ, चरपट नाथ आदि और भी नाथ आलौकिक शक्तियों से युक्त माने जाते हैं जिनका सिद्ध सम्प्रदाय सिद्ध पुरुषों, बाबा दयोट सिद्ध, बाबा सिव्वो, बाबा अजियापाल आदि से विशेष सम्बन्ध बतलाया जाता है। ये सभी सिद्ध तथा नाथ सम्प्रदाय के चमत्कारिक पुरुष जो आलौकिक शक्तियों से युक्त थे। हिमाचल प्रदेश की रमणीक घाटी में अपनी योग साधनाओं हेतु अराधना के मनतव्य से आए और इन सिद्ध तथा नाथ पुरुषों ने हिमाचल प्रदेश की जिस भी गुफा, नदी, तट, टीले तथा वनखण्डी को अपनी अराधना हेतु चुना वह आज के युग में तीर्थ स्थल के नाम से इन पुरुषों का नाम लेकर पुकारा जाता है। हिमाचल प्रदेश में इन सिद्ध तथा नाथ पुरुषों ने अपने सम्प्रदाय का प्रचार तथा प्रसार भी किया और यहां रहने वाले कुछ लोग इनके चमत्कारों से प्रभावित होकर इनके अनुयायी बन गए

जिनके वंशज अब नाथ (जोगी) जाति के लोग इन सिद्ध नाथ पुरुषों की गाथाओं को गाकर आजीविका उपार्जन करने लगे परन्तु समय के बदलाव के साथ अब ये नाथ (जोगी) जाति के लोग गृहस्थी बन गए हैं परन्तु इन्हीं के कुछ वंशज जो अभी भी सिद्ध नाथ पुरुषों की अराधना स्थलियों पर विराजमान हैं उनसे सिद्ध तथा सम्प्रदाय के तथ्यों का पता चलता है। सिद्ध नाथ सम्प्रदाय के स्थलों को देव स्थल कह कर पुकारा जाता है और इन स्थलों पर अभी भी आलौकिक चमत्कारों का प्रदर्शन होता है। जहां दयोट सिद्ध के स्थल पर जाने से पागलपन तथा कई प्रकार के मानसिक रोगों से छुटकारा मिलता है वहां गूगा जहरपीर, सिब्वों तथा नगनी के देव स्थलों पर पानी और मिट्टी के इलाज से सांप के काटे हुए मनुष्यों, पागल कुत्तों के काटे हुए लोगों तथा प्रत्येक प्रकार की विषैली वस्तुओं के विष का असर दूर हो जाता है।

गूगा जहरपीर (वीर) के देवस्थल हिमाचल प्रदेश के अनेक भागों में हैं। इन देव स्थलों पर सांप के काटे लोगों का इलाज पानी और मिट्टी से किया जाता है। इन देवस्थलों पर लोगों की भारी आस्था है और यह स्थल इस बात के भी प्रतीक माने जाते हैं कि इन स्थलों पर कुछ समय बैठ कर गूगा जहर पीर (वीर) ने अपनी आराधना की होगी। इन्हीं स्थलों के आस पास प्रतिवर्ष रक्षा बंधन के दिन से लेकर गूगा अष्टमी तक गूगा गाथा गाई जाती है। इस भू भाग की गूगा गाथा के अनुसार गूगा जहर पीर राजस्थान के मारवाड़ इलाके के अन्तर्गत दद्रेहरा (दुधन्हेरा या दुनेरा) रियासत के शासक थे। लोक गाथा के अनुसार इन के पिता का नाम जेऊर बताया जाता है। राजाजेउर की दो रानियां काशला और बाशला थीं परन्तु एक लोक गाथा के अनुसार गूगा जहर पीर के पिता का नाम देवराज बतलाया जाता है। सम्भवतः राजा जेऊर का नाम देवराज उन की देव प्रकृति के अनुसार पड़ा होगा। इस भू भाग की लोक गाथा के अनुसार गजनी के राजा बलदेव राज की दो लड़कियां बाशला और काशला थी। वे दोनों ही राजस्थान के दद्रेहरा रियासत के राजा की रानियां थी। इस लोक गाथा के अनुसार गजनी का राजा बलदेव जब किसी शत्रु का दमन करने हेतु दूर गया हुआ था तो उस के गजनी से चले जाने के उपरान्त ही बाशला और काशला का जन्म हुआ। राजा बलदेव अपने शत्रुओं का दमन करके जब बारह वर्ष के उपरान्त घर पहुंचा तो उसे काशला और बाशला महलों के पास मिली। राजा बलदेव के वंशज उन दिनों लड़कियों को पैदा होते ही जान से मार दिया करते थे। बाशला और काशला की माता को जब राजा बलदेव के आने की सूचना मिली तो उस ने अपने एक मन्त्री को बाशला और काशला के अंगरक्षक के रूप में नियुक्त किया और अपने हाथ से राजा बलदेव के लिए एक पत्र भी लिखा दिया कि वह उन लड़कियों को क्रोधित होकर जान से न मार दे क्यों कि राजा बलदेव के वंशजों में लड़कियों को पैदा होते ही जान से मार देने की प्रथा थी। बाशला और काशला दोनों बहनों का जन्म मंगलवार को हुआ था इस लिए उन की माता उन्हें देवियां समझती थी।

लोक ग।था के अनुसार :-

मंगल वारें परगट होईएं शक्ति नाम रखाया।
दक्खण पूर्व संघ चढ़ि आऊंदे दर विच आसन लाया।
लै परदखणा फिरन चफेरें दर विच आसन लाया॥

गजनी के बलदेव राजा की लड़कियों के प्रति क्रूरता गाथ। इस पंक्ति में है :-

'गढ़ गजनी दा बलदेव राजा धीया नूं रखदा नाईं"

अर्थात् राजा बलदेव बेटियों को जान से मार देता था। जब राजा बलदेव अपने शत्रुओं का दमन करके बारह वर्ष के उपरान्त गजनी वापस लौटा तो वह रास्ते में महल के पास वाशला और काशला दोनों बहनों को देख कर कहता है :-

राज। :- केहड़ा लड़कियो तुहाड़ा शहर ग्रां है ?
किस राजे दी जाई ?

लड़कियां :- गढ़ गजनी दा शहर ग्रां है,
बलदेवे दी ज।ई ?
इतणी गल्ल सुणी राजे ने,
लई ए तेग उठाई।
कोलों उठ वजीर प्यारा,
चिट्ठी कड दिखाई।
चिट्ठी बाची बलदेवे ने,
लईयां गोद बिठाई।

इस प्रकार जब राजे ने दोनों बेटियों को अपनी गोदी में बैठाया तो लड़कियां कहने लगीं,

लड़कियां : जे तूं साड़ा धरमी वावल,
पट दी पींग पुआ दे।

राजा : कुथूं दे पट दियां मंगाई,
कैंहदी पींग पुआं मैं ?
पच्छम पट्ट मगुआ देवां मैं
पिप्पल पींग हुलारे
पींगां झूटदियां इक्क वाशला
दूजी काशला भैण वे हां...
इक्को दईयां झूटदियां मेरी माता दे दरबार
सदा शिव दुर्गा दे अवतार।
सिर पर सूईयां चादरां सोवन

गल फुल्लां दे हार
ठंडियां गुफां दियां छावां
ऊच्चे पिप्पल पींगां पईयां
सोहल पंघ्ड़ पर दियां ल्हासां
झूटन वारो-वार।

यह गाथा बाशला और काशला के बचपन से यौवन तक सम्बन्धित है। इसके उपरान्त गजनी के राजा बलदेव ने इन दोनों बहनों का विवाह मारवाड़ (राजस्थान) की रियासत दद्रेहरा (दुधन्हेरा या दुनेरा) के राजा जेउर (देव राजा) से कर दिया। लम्बे समय तक ये दोनों बहने निस्सन्तान रहीं। इस बात का प्रमाण गाथा की इन पंक्तियों से मिलता है।

'न्होई धोई इक्क दिन राणियां आरसिया मुख लाया,
कालड़ियां केसां दे धौलड़े होए केसां रंग बदलाया।
राणी रोई ए . ?

रानी के रोने की बात सुन कर राजा महल को आया और पूछने लगा।

'खुलियां तणियां पैर प्यादें राजा मैहलां की आया'

राजा : 'सुखे दी रोंगी राणीं तां सड़गा मारी दुखे दी रोंगी तां पईएं पुजांगा'
बाशला : 'कदूं तां होणा राजा पुत्तरियां सौतरियां, कदूं खल्हाणे गोदा जाए ?'
राजा :- कर्मां नीं लिखे साड़े गोदा नयाणें,
कुथूं दे खल्हाणें गोदा जाए ?
हटियां हुन्दे राणी मैहंगे खरीद दे
पुत्तर नीं मिलदे उधारे
सदद के पण्डत बाशल पुछदी
सांजो आंसिया दा कोई जतन बता
पोथी बांची पण्डत बोलदा
गोरख टिल्ले जा

पण्डत की इस बात पर बाशला गोरख टिल्ला जाती है और बारह वर्ष तक गुरू गोरख नाथ की तपस्या करती है। बारह वर्ष की बाशल की तपस्या से जब गोरख टिल्ला हिलने लगता है तो गुरू गोरख नाथ के चेले टिल्ले के हिलने का कारण पूछते हैं तो गोरख नाथ जी कहते हैं।

'भगति संपूरन हो गई चेलियो बाशल माई'
गोरख चल्लिया टिल्लियों गहरी नाद बजाई
तिन सौ सट्ठ चेला चल्लिया गासें धुंध मचाई
डरदे लोकी शहर नगर दे एह के आफत आई ?

मैहल चड़ी राणी बाशल दिखदी एह गुरू मेरे आए
सन्दल बाग पिपलां दे हेठें संतां आसन लाए
फुल पताशे बाशल पाए गुरां दे पासें आई
अग्गें गुरू बोलदे कौन खड़ी मेरी माई ?
फलां दे कारन आईयां गुरूआ दे फल हमरे ताईं
वेवक्ता फ़ल कोई न पाए पैहली किरना आईं

बाशला को जब गुरू गोरख नाथ ने सुबह फल देने को कहा तो वह बड़ी प्रसन्न हुई और घर लौट आई। उस ने घर आ कर यह बात अपनी छोटी बहन काशला से बतलाई। काशला बड़ी चालाक थी। जब सायं काल हुआ तो वह अपनी बड़ी बहन के पास गई और कहने लगी :-

काशला :- 'दियां नीं भैंणें वस्त्र अपणें पीर मनामण जाणा'
बाशला :- 'एह लै चाबी खोल पटारू लई लैं नौआं पुराणा'
काशला :- नौए वस्त्र रैहन पटारू मैं तेड़े दा लैणा

बाशला अपनी बहन काशला की यह बात सुन कर अपने वस्त्र उतार कर उसे दे देती है और काशला उस के वस्त्र पहन कर आधी रात के समय ही गुरू गोरख नाथ के पास चली जाती है। उसे देख कर गुरू गोरख नाथ कहते हैं :-

गुरू गोरख नाथ :- 'अद्दिया राती पक्कें धरातें तू कौन खड़ी मेरी माई ?'
काशला :- फलां दे कारन आईयां गुरूआ दे फलहम रे ताईं

जब गुरू गोरख नाथ उसे सुबह आने की बात कहते हैं तो काशला कहती है कि पण्डित ने यही महूर्त फल लेने का बतलाया है। उस की यह बात सुन कर गुरू गोरख नाथ ने अपनी झोली में हाथ डाल कर उसे दो जौ के दाने दे दिए। जिस को खा लेने से कालान्तर काशला के दो पुत्र अर्जुन और सुर्जन पैदा हुए। सुबह होने पर बाशला भी फूल और पताशे थाली में डाल कर गुरू गोरख नाथ के पास फल लेने जाती है। गोरख नाथ उसे कहते हैं कि तू अभी फल ले कर गई है तो वाशला कहती है 'वह मेरी छोटी बहन होगी'। गुरू गोरख नाथ इस बात को सुन कर अचम्भित रह जाते हैं और अपनी झोली में पुनः हाथ डालते हैं तो उन्हें कोई फल नहीं मिलता वह चेलों से सलाह करते हैं और विधि माता के पास जाते हैं। वहां से भी उनको नकारात्मक उत्तर मिलता है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के पास जा कर भी उन्हें बाशला के लिए फल नहीं मिलता और अन्त में वह पाताल लोक में बासुरी नाग के पास जाते हैं तो बासुरी नाग उन्हें कहता है कि जिस प्रकार का भी फल लेना है ले जा सकते हो तो गुरू गोरख नाथ कहते है :-

'जे तू फल देणा साकी तां सज्जे पौए दा नाग दई दे
रोशन चार चफेरे दा

गोरख नाथ जी की इस बात को सुन कर बासुकी नाग कहता है कि ऐसा करने से पाताल पुरी में अंधेरा हो जाएगा परन्तु गुरू गोरख नाथ नहीं मानते और वह

मन्त्र के द्वारा नाग को गुग्गल (धूप) बना लेते हैं ।

'अच्छत मारे गुरू गोरख नाथां गुग्गल गडियां नाग बणाया अपणी झोली बिच पाया'
'मार फंकारे बान्दी नागण आई कित्थे जाणा राजिया तू जान बचाई तां अच्छत मारे गुरू गोरख न.थां गुग्गल गडियां नागणी बणाई ।

नागणा : 'मैं शीतल होईयां ते मेरी पेश न कोई मेरी जोड़ी न खण्डायां'

गुरू गोरख नाथ अब उन गुग्गल की गट्ठयियों को ले कर चले आए और उन्होंने वह फल के रूप में बाशला को दे दी और पीस कर खाने को कहा । बाशला फल को ले कर घर चली आई । उन गुगल की गट्ठियों को उस ने पत्थर की शिला पर पीसा तथा गुग्गल को खा कर पानी पी लिय। और वह शिला को लेकर नदी में फैंकने के लिए चल पड़ी । रास्ते में उसे एक चूहड़ी (डोम की पत्नी) मिली वह उस के हाथ से शिला ले कर समुद्र में फैंकने चल पड़ी । रास्ते में उस ने शिला का शेष गुग्गल जिह्वा से चाट लिया और शिला समुद्र में फैंक दी । शिला जल घोड़ी ने खाई जिस से नीला घोड़ा पैदा हुआ जो बाद में गूगे की सवारी के लिए प्रयोग में आया । वह चूहड़ी (डोम की पत्नी) जिस ने शिला को जिह्वा से चाट लिया था उस से बाबा कैंलू की उत्पति हुई । गुरू गोरख नाथ ने दूसरे नागण वाली गुग्गल की गट्ठी गढ़ बंगाल के राजा सिरी चन्द की रानी को दी वहां उसे सिलियर नाम की लड़की पैदा हुई जो बाद में गूगे की पत्नी बनी । बाशला के इस घटना के उपरान्त भी बच्चा न हुआ । गुगा बारह वर्ष तक बाशला माता के गर्भ में रहा । यह बात देख कर राजा ने बाशला को निस्सन्तान जान कर उसे देश निकाला दे दिया । उसे रथ पर बैठा कर रथ वाहक को बाशला को जंगल में छोड़ने की आज्ञा दे दी । बाशला का रथ जब जंगल में पहुंचा तो वह बाशल। को वहां छोड़ कर कुछ देर विश्राम करने लगा । वहां एक बड़े सांप ने रथ वाहक और घोड़ों को काट खाया और सांप बाशला की ओर बढ़ा तथा बाशला उसे देख कर रोने लगी तो उस के पेट से गूगा बोला 'माता तू क्यों रो रही है? पेट से आई आवाज़ को सुन कर बाशला बोली 'तू कौन शै है जो मेरे पेट से बाहर नहीं आती जबकि मुझे तेरे लिए देश निकाला हो चुका है और मैं अब अपने मायके जा रही हूं' माता तू घर को वापस लौट क्योंकि मैं अपने न.ना के घर पैदा नहीं होऊंगा यदि ऐसा हुआ तो मैं नानकू कहलाऊंगा और जब इस संसार से सूतक हट जाएगा अर्थात् कोई बच्चा जन्म न लेगा तो उस समय मेरा जन्म होगा' पेट के अन्दर की ध्वनि को सुन कर बाशला पुनः वापस गोरख टिल्ला की ओर गई और उस के एक वर्ष पुनः गुरू गोरख नाथ की तपस्या की । गोरख नाथ ने बाशला को घर जाने को कहा । जब बाशल। अपने महल की मण्डी (डयोढ़ी) पर पहुंची तो गोरख नाथ ने ब्रह्माण्ड का सारा सूतक अपने हाथ पर थाम लिया तथा उसी क्षण गूगा का जन्म हुआ । मण्डी (डयोढ़ी) में पैदा होने के कारण गूगा चौहान को गूगा मण्डलीक कहा जाता है ।

गूगा की बरसोली (मन्त्र)

लाड सहेले गुरू गोरख चेले बैठे न आसण लाई
बारह तां बारह चौवी छूए मां बाशला सेवा कमाई
उडदे तप धियाए जीह्वा चौंके पाए
लूणिया सिल्ला चट्टी धार कीते
सुन्ने केसे व्हारिएं तूं तां सेवा दे फल पाए
राजा मण्डलीक कच्चें धागें पाणी दी चूटिया
विसां दे निरमिस कीते मोयां धौलां की सांस पाए
गर्भाषय बक्खें गल्लां कीतियां तां गूगे चौह.न मण्डलीक कहाए
खुलियां तणियां पैर प्यादें देव राज मैहलां की आए
सद्द बुलाया बोलूं नागरची चोट नगारें पुआई
गढ़ दुधन्हेरें नौवत बज्जी बज्जी गूगे दी बधाई
दिल खुशियां बिच अ.ई
भण्ड मरासी करन कल्याणां बज्जी गूगे दी बधाई
रल मिल नारां मंगल गावन, गावन गूगे दी बधाई
अम्मा बाशल बन्ददी बधाईयां दिल खुशियां बिच आई
लोकी सारे करन कल्याणा ब्राह्मण सीरवाद बुलाई
सद्द बुलाए सिरी खण्ड परोहित सद्द बुलाणे गुरू गोरख मस्तक भबूत चढ़ाई
पंज दिनां दा होया गूगा रास गणामण लाई
पण्डित वईयां बाचदे, पोथियां बाचदे बाचन वेद पुराणे
नानकें चंगा दादकें चंगा कुले की माड़ा नाईं
चार कूंट दा राज करना र.जा तेकी कमी नाईं
पहलें पहरें राजा मण्डलीक जन्मे दूजें गुगड़ी जाई
तीजें पैहरें नील. रथ जम्मियां चौथें कैला बच्छी जाई
चौनें पैहरां चौरे जीव जन्मे जग बिच रोशनी आई
गूगे दी मां अम्मां बाशल नीले रथ दी घोड़ी
जद तक्कर रैहण गूगा चौहान चारे चीजां रैहांगियां
जोड़ी टल बिच आई ॥

गूगे के विवाह का झेड़ा

पहला तमोल गुरु गोरख ल.न्दे, मस्तक भबूत चढ़ाई
दूआ तमोल सिरी खण्ड ब्राह्मण लान्दा तिलक जनेऊ पाई
तिरजा तमोल मासी काशल लान्दी माख मण्डूक च आई

चौथा तमोल भैण गुभगड़ी लान्दी घोड़ें बाग फड़ाई
पंजवा तमोल अम्मां बाशल लान्दी मुख मम्मा पलाई
सब साऊ सलाईं करदे कैलू जानियां नीणां नाईं
सब साऊ जानियां चल्ले कैला काला जातिया नीणां नाईं
भैण गुग्गड़ी अरजां करदी सब साऊ जातियां चल्ले
दुधन्हेरें रिआ नी कोई, मैं किल्लिया नी रैहणा भाई
तूं रैह दुधन्हेरें भाई
जिन्हां गल्लां देई तूं गलानी मैं अग्गें जाणनां जाई'
गोरे गोरे सब जानियां नीणें काला नीं नीणां कोई
लैन्दे राकियां देन फराकियां थैय्या थैय्या पर जाई
सिर ऊंकारां दियां कगलियां नाग नागणियां तलवारीं
मंजलें मंजलें चलदी जानी रैहन्दी संकर घटिया जाई
अद्दिया रतीं पर भाते बेलें नागां की खबर आई
मंग थी साड़ी नागो गूगें ब्याहमण लाई
अद्दिया रातीं ठारह खरोणी नाग
चढ़े मातर लोके की आई
फिरदा-फिरदा घेरा पाया राजे की जाग नीं आई
छम-छम देई के राजा रोन्दा हुन्दा कैलू भाई तां लैन्दा छुड़ाई
हुकम कीता सुरगणू वीरें 'जा दुधन्हेंरे ताईं'
जाई गलाया भैणा गुगड़िया नागां घेरिया आईं
रातो रात उडिया सुरगणू आया दुधन्हेरे ताईं
मिलदा भैणा गुगड़िया की सारी गल्ल सुणाई
खुलियां तणियां पैर प्यादें भैण गुगड़ी कैलुए पास आई
'सुतिया वीरा सुपना होया संकर घाटिया नागां घेरा पाई
उठ तैयार हो वीरा जा संकर घाटिया ताईं
नागां ने युद्ध करना कनैं वीर लैणा छुड़ाई'
'पंज अग्नी जे घोड़ा दैं तां मैं जाना
लैंना वीर छुड़ाई जाना संकर घाटिया ताईं''
ओथों चलदी भैण गुगड़ी घोड़े ने अरजां की आई
सुआरी दे कैलुए की संकर घाटिया ताईं
घोड़ा बोलै बोल, 'कैलुएं सुआरी दिंगा कैलुए ताईं'
मेरे ने खुरी लाई तां जिमी पर मारगा भुआई

जे मेरे ने छिट्टी लाई तां आसमान दिग्ग उड़ाई'
हुकम कीता खरबेदारें ठारहं मणां दी पक्खर पाई
हीरे मोती लाल जड़े उप्पर लाल जड़ाई
लिया अग्नी घोड़ा कैलू करदा सुआरी भाई ॥
घोड़े दा होया सुआर कैलू वीर डूडी पैहरे च संकर बाटिया जाई
मारिया ललकारा नागां ताई
एह राजा दुशमण मेरा गोरे-गोरे साऊ जानियां आन्दे
काला नीं आन्दा कोई
इक्क पासे तें करो लड़ाई
ठारह खरोणी नाग किट्ठे कीते उप्पर चादर उढ़ाई
सारे नाग भस्म कीते कालिया न्हट्ठा जाई
मेरी जान रख राजिया तूं धरम दा भाई
कैलू बोले, 'सुण राजा छड थां दुसमणें जाई
राजा बोलिया सुण कैलू, 'एह बाणियां धरम दा भाई' ॥

इस प्रकार गूगा चौहान की सहायता उसका भाई कैलू करता है और गूगा चौहान का विवाह गढ़ बंगाल में सिरी चन्द राजा की लड़की सिलियर से सम्पन्न हुआ। गूगा चौहान बारह वर्ष तक अपने ससुराल में ही व्यतीत कर देता है। इस समय में अर्जुन और सुर्जन दद्रेहरा (दुधन्हेरा) की रियासत पर अपना अधिकार स्थापित कर लेते हैं। उन की माता काशला का देहान्त अर्जुन और सुर्जन के जन्म लेने के उपरान्त ही बताया जाता है और गूगे के जन्म के एक वर्ष उपरान्त उन के पिता का देहान्त बतलाया जाता है। गूगा बारह वर्ष के उपरान्त जब वापिस लौटता है तो वह अपना राज्य सिंहासन का अधिकार अर्जुन और सुर्जन से मांगता है, क्योंकि वह काशला की बड़ी बहन बाशला का पुत्रहै, परन्तु अर्जुन और सुर्जन राज गद्दी छोड़ने से इन्कार कर देते हैं। माता बाशला को इस बात की खबर नहीं होती क्योंकि गूगा चौहान अपने ससुराल से आ कर सीधा राज दरबार में जाता है। राज्य के लिए गूगा चौहान का अर्जुन और सुर्जन से युद्ध होता है तथा वे दोनों भाई युद्ध में मारे जाते हैं। इस के उपरान्त गूगा चौहान भारत का छत्रपति राजा बन जाता है। छत्रपति राजा बनने के लिए उसे अनेक युद्ध करने पड़ते हैं। अपने सेनापति अजियापाल और अपने भाई कैलू की सहायता से नीले घोड़े का सवार गूगा चौहान सभी युद्धों में विजय प्राप्त करने के उपरान्त अपनी मां के पास जाता है। बाशला उससे अर्जुन और सुर्जन के युद्ध में उसके हाथों मारे जाने का समाचार पाकर गूगा को 'देश निकाला' अर्थात् देश से निकल जाने की आज्ञा दे देती है। गूगा चौहान को भी अर्जुन और सुर्जन की मृत्यु का पश्चाताप होता है और वह गुरू गोरखनाथ की शरण में जाकर वैराग्य प्राप्त कर लेता है तथा चमत्कारयुक्त होकर भारत का भ्रमण करता है। कुछ लोगों का कहना है कि अपने गुरुओं की रक्षा हेतु किसी

युद्ध में गूगा का देहान्त हो जाता है परन्तु यह किंवदन्ती एक चमत्कारी पुरुष की मृत्यु के लिए ठीक नहीं उतरती । कुछ गूगा के भक्तों का यह कहना है कि एक बार गूगा की बहन के कहने पर गूगा की पत्नी ने गोबर में तेल डाल कर अपना भवन लीपा-पोता था और उसी गोबर का उसने चौका डाल लिया था । उससे दूसरे दिन ही सूर्य उदय होने पर गूगा चौहान ने वहीं आकर अपनी समाधि ले ली थी । इस प्रकार हिमाचल प्रदेश की लोक गाथाओं में अनेक ऐतिहासिक तथ्य देखने को मिलते हैं । गूगा चौहान के जीवनवृत्त से हमें सिद्ध-नाथ सम्प्रदाय के चमत्कारों तथा अनेक अलौकिक शक्तियों एवं भारत की आध्यात्मिकता और हिमाचल प्रदेश में स्थित अराधना स्थलों का पता चलता है ।

गांव व डाक० फतेहपुर, तह० नूरपुर,
जिला कांगड़ा, हि० प्र०-176050

—:—

"संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है ।"

— आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
(अशोक के फूल, पृ० 63)

"संस्कृति का अर्थ है सृजनात्मक अनुचिन्तन । संस्कृति मानव जीवन के सर्वग्राह्य आत्मिक जीवन रूपों की सृष्टि और उसका उपभोग है ।"

— डॉ० देवराज
(संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ० 30)

गोरखा सम्प्रदाय में दशहरा उत्सव

□ मगन 'पथिक'

गोरखा सम्प्रदाय में दशहरा उत्सव विशेष उमंग और उल्लास के साथ मनाया जाता है। दशहरा से कई दिन पहले घरों की सफाई आरम्भ हो जाती है। आंगन के आसपास छोटी-छोटी कियारियों में रंग-बिरंगे फूल उगाए जाते हैं। घरों को अन्दर बाहर से सजाने का प्रयास किया जाता है। परिवार के सभी सदस्य मिल-जुल कर यह काम सहर्ष करते हैं।

असौज मास में शुक्ल प्रतिपदा के दिन प्रत्येक घर में (पूजा-कक्ष में) 'घट स्थापना' की जाती है अर्थात देवी दुर्गा की प्रतिमा या चित्र के आगे जल से भरा हुआ पात्र (घट) रखा जाता है और उसके पास दीया जलाया जाता है। तलवार, कटार या खुकरी को नग्न रूप में पूजा-स्थल पर सजाया जाता है। बड़े बड़े पत्तों के डोने या टवरियां बनाई जाती हैं जिनमें शुद्ध मिट्टी डाल कर जौ अंकुरित करने हेतु बीजे जाते हैं। धार्मिक ग्रन्थों को भी वहां श्रद्धापूर्वक रखा जाता है। स्त्रियां प्रातः नियमित रूप से पूजा-उपासना करती हैं तथा जौ के अंकुरों पर जल का छिड़काव करती हैं। घर के सभी सदस्य सायंकाल की पूजा-आरती में अवश्य सम्मिलित होते हैं। 'घट स्थापना' द्वारा उस देवी का आवाह्न किया जाता है, जिस के अन्दर महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वती तीनों शक्तियां विद्यमान हैं। पुराने लोग दुर्गा पूजा के दौरान मालश्री (मातृश्री) स्तोत्र का स्वभाषा में सस्वर पाठ करते थे तथा विजय-सुख आदि की कामना करते थे परन्तु आजकल यह काम प्रायः पुरोहितों को निभाना पड़ता है। मालश्री स्तोत्र की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :-

जय जय गणेश श्रीगणेश, गुरुवर गोरखनाथ हे
दर्शन देऊ माता भवानी, चौंसठ्ठी योगिनी साथ हे
महा सरस्वती, महालक्ष्मी, महादुर्गे हितकारिणी
जगत जननी माई भवानी, भक्तजन वरदायिनी
शिर मुकुट कान कुंडल, पाउ बिछ्वा सुहाए की
जगमग ज्योति चारै पट्टि, रातो ध्वजा फहराए की
ज्वाला नयनी प्रचण्ड रूपिणी, रक्त बीज निपातिनी
डमरू डिम-डिम हाथ त्रिशूल, खण्ड खप्पर धारिणी
अर्द्ध चन्द्र ललाट शोभित, मुंड माला लाएकी

मारी शुम्भ निशुम्भ दानव, रक्त धारा बगाएकी
अखिलेश्वरी ब्रजेश्वरी, चंड खंडिनी अम्बिके
रक्त दन्ती दैत्य हन्तनी, काल विकरालिनी चण्डिके
आदि दुर्गा सिंह वाहिनी, काली रूपा रुद्राणी हे
जय जय देवी शक्ति दायिनी विजय देऊ भवानी हे ।

घरों के इलावा गांव में सामूहिक रूप से किसी सार्वजनिक स्थान में शुक्ल प्रतिपदा के दिन 'घट स्थापना' की जाती है तथा देवी की उपासना के लिए कुछ व्रतधारी स्वयंसेवक दिन-रात पूजा स्थल पर तैनात किए जाते हैं । सप्तमी के दिन गांव के सभी लोग (बच्चे, बूढ़े, नर-नारियां) जलूस के रूप में 'फूल पाती' लाने के लिए भजन-गान सहित गांव की परिक्रमा करते हुए पूर्व-निश्चित पवित्र-स्थान (मन्दिर) में जाते हैं । वहां बैठकर भजन-कीर्तन करते हैं तथा वहां से फूल तथा पत्तियां पालकी में सजाकर देवी को चढ़ाने के लिए पूजा-स्थल की ओर वापिस लौट आते हैं । सामूहिक पूजा-आरती के बाद सभा विसर्जित होती है । 'फूल पाती' के इस उत्सव का लुत्फ व आनन्द बच्चे खूब उठाते हैं । गोरखा यूनिटों मे इस जलूस में सभी जवान बावर्दी भाग लेते हैं तथा ब्रास बैन्ड एवं पाइप बैंड की टुकड़ी इस जलूस का नेतृत्व करती है । स्थान-स्थान पर जलूस को रोका जाता है तथा कुछ देर वहां बैंड वादन की सुरताल पर मनमोहक नृत्य पेश किए जाते हैं जिन्हें देखने के लिए लोगों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है । जलूस के लौट आने पर पूजा-स्थल के समीप प्रांगण में मौला (बलि वेदी-स्तम्भ) गाड़ा जाता है ।

महाअष्टमी की अर्द्धरात्रि के समय देवी पूजा के साथ-साथ पशु बलि की प्रथा भी है । गोरखा यूनिटों में भैंसे की बलि दी जाती है परन्तु गांव में बकरे की बलि दी जाती है । आधी रात तक भजन-कीर्तन, नाच गाना अथवा पौराणिक आधार पर नाटक आदि का कार्यक्रम चलता रहता है । रात्रि के इस बलिदान के दृश्य को देखने के लिए बच्चे भी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे होते हैं । महानवमीं की सुबह शस्त्र-पूजा तथा 'मार' (बलिदान) का कार्यक्रम तेज़ होता है । प्रत्येक गोरखा यूनिट में कम से कम पांच भैंसे, बीस बकरे, कुछ मुर्गे, कुछ बत्तखें एवं कुछ पेठों की पंचबलि अर्थात पांच प्रकार के प्राणियों की बलि देने की प्रथा थी । आजकल इस प्रथा में थोड़ा सा परिवर्तन आया है । बकरों-मुर्गों की संख्या ज्यों की त्यों है परन्तु भैंसे और बत्तखों की संख्या घटा कर एक एक से ही काम चला लिया जाता है । सम्भव है कुछ समय उपरान्त भैंसे और बतखों का स्थान नारियल व ककड़ियां ले लें । प्रत्येक गोरखा यूनिट में शस्त्र-पूजा एवं 'मार' का उत्सव महानवमी के दिन धूमधाम से मनाया जाता है । परेड ग्रांउड में सभी आफिसर व जवान एकत्र होते हैं, सह-भोज का आयोजन होता है । जो जवान खुकरी के एक ही वार से भैंसे की गर्दन काट डाले, उसकी खूब प्रशंसा होती है । कर्नल उसके सिर पर पगड़ी बांधता है, उसके गले में फूलों की माला पहनाता है और उसे नकद इनाम देता है । परन्तु यदि वह जवान ऐसा न कर सके तो उसके चेहरे पर उसी भैंसे का खून मल दिया जाता है – यह अपमान सूचक होता है । बाद में बकरे तो वहां इस प्रकार से काटे जाते हैं जैसे मूलियां चटाचट कट रही हों । गांव में भी पूजा-स्थल के प्रांगण में (बलिवेदी पर) बहुत से बकरों की बलि दी जाती है । वर्ष में कम से कम एक बार

बकरे की बलि दी जा सके-यह इच्छा लगभग प्रत्येक गोरखा परिवार में होती है। अतः वे अपना-अपना बकरा लेकर 'मार' के दिन पूजा-स्थल के प्रांगण में (मौला या बलिवेदी पर) पहुंच जाते हैं। मांस को देवी के प्रसाद के रूप में ग्रहण किया जाता है। मीट के साथ थोड़ी सी मदिरा ले कर पुरुष लोग दशहरा को आनन्दपूर्वक मनाते हैं। बच्चे मुट्वा-रक्तुवा एवं मीट का जायका लेते हैं तथा उनको फल-मेवे आदि का प्रसाद भी मिलता है।

शुक्ल प्रतिपदा से लेकर महानवमीं की रात्रि को 'नवरात्रा' का नाम दिया जाता है। परिवार के कुछ लोग विशेषतया बच्चे रोज़ाना रात को रामलीला देखने जाते हैं परन्तु स्त्रियां एवं धार्मिकवृत्ति के पुरुष घरों में रह कर देवी की उपासना करते हैं। इन दिनों वे अल्पाहारी होते हैं। लोग रात देर तक जागते हैं तथा प्रातः बहुत जल्दी उठ जाते हैं ताकि रात्रि के दौरान देवी की पूजा के लिए अधिक से अधिक समय दिया जा सके। देवी की स्तुति के साथ-साथ प्रार्थना-याचना की जाती है, 'हे दुर्गे मातेश्वरी, तू हमारे दिलों में वीरता एवं साहस का संचार कर। हे लक्ष्मी माता, तू हमें सुख-स्वास्थ्य का वरदान दे। हे सरस्वती मां, तू हमारे बच्चों को विद्या-ज्ञान का आशीर्वाद दे।'

शुक्ल महादशमी की सुबह परिवार के सभी सदस्य स्नान उपरान्त साफ-सुथरे कपड़े पहनते हैं। स्वादिष्ट भोजन तैयार किए जाते हैं। भोजन में मीट का विशेष स्थान होता है। घर को खूब सजाया जाता है। देवी की पूजा की जाती है। लगभग दस बजे प्रातः बन्दूक फायरिंग की आवाज होती है। लोग समझ जाते हैं कि अब "टीका" (तिलक) लगाने की इजाजत है। बन्दूक की आवाज़ को सुनकर बच्चे खुशी से तालियां बजाते हैं और खूब शोर करते हैं। चारों तरफ हर्ष व उल्लास का वातावरण होता है। गृहिणी एक बड़े थाल में कुछ चावल रखती है और उसके साथ दही मिला कर "टीका" तैयार करती है। जौ के अंकुरों का थोड़ा सा भाग काट कर उसी थाल में रख दिया जाता है। इन अंकुरों को "जमरा" कहते हैं। सर्वप्रथम देवी को 'टीका' और 'जमरा' अर्पित किया जाता है। इसके पश्चात् परिवार के मुखिया सभी सदस्यों के मस्तक पर बारी-बारी दही-अच्छेता (चावल) का टीका तीन-तीन बार लगाते हैं और आशीर्वाद देते जाते हैं। मुखिया द्वारा जमरा दिए जाने पर प्रत्येक सदस्य उनके पांव पर सिर रखता है अर्थात उनको 'ढोग' देता (प्रणाम करता) है। आशीर्वाद देकर वे प्रत्येक को कुछ न कुछ रकम नकद देते हैं। आशीर्वाद के शब्द :--

विसासैं आयु होस्! (अर्थात् तुम्हारी लम्बी आयु हो!)
ठूलो ठूलो हुनु, हुंने खाने हुनु! (तुम्हारे मान-धन में वृद्धि हो!)
कुलको नाम धान्नु! (खानदान का नाम रोशन करो!)
खूब विद्या पढ़नु! (तुम्हें खूब विद्या प्राप्त हो!

परिवार के मुखिया के बाद बड़ी उम्र के सदस्य अपने से छोटे प्रत्येक सदस्य को इसी प्रकार टीका लगा कर आशीर्वाद देते हैं। परिवार में टीका का यह कार्यक्रम समाप्त होने पर परिवार के सदस्य बारी-बारी अपने रिश्तेदारों के यहां टीका लगवाने तथा आशीर्वाद प्राप्त करने के उद्देश्य से जाते

है। अर्थात्, रिश्ते में जो छोटे हों, वे बड़ों के यहां जाते हैं। अपने साथ उपहार के तौर पर कुछ मीट तथा कुछ फल-मेवे आदि जरूर लेकर जाते हैं। टीका लगवाने के बाद वहीं पर उन सब के लिए भोजन का प्रबन्ध होता है। क्योंकि रिश्तेदार प्रायः विभिन्न गावों में होते हैं, अतः टीका लगाने का यह आदान-प्रदान पूर्णमाशी तक चलता रहता है। फौज में हों या सिविल में, दूर हों, या नजदीक, दशहरा के अवसर पर घर आकर बुजुर्गों, रिश्तेदारों से टीका व आशीर्वाद प्राप्त करना सभी अपना फर्ज समझते हैं।

महादशमी की शाम को गांव के सभी लोग पूजास्थल पर एकत्रित होते हैं। देवी की प्रतिमा या चित्र सहित पत्र-पुष्प और जमरा आदि सभी चीज़ें विधिपूर्वक पालकी में रखी जाती हैं और जलूस की शक्ल में लोग भजन-संकीर्तन करते हुए नदी (नाले) की ओर जाते हैं, जहां पहुंच कर जल-प्रवाह (दशहरा विसर्जन) का कार्यक्रम सम्पन्न होता है।

सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से यह त्यौहार सचमुच ही अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गोरखा जाति के गत दो सौ वर्षों का इतिहास उन की वीरता, कर्तव्य-परायणता एवं ईमानदारी के गुणों से ओत-प्रोत है। अतीत में वीर कमरसिंह, भक्ति थापा, बलभद्र तथा उनके बहादुर सहयोगियों ने साहस एवं बहादुरी के क्षेत्र में जो बेमिसाल ख्याति प्राप्त की थी, आज भी उस परम्परा को कायम रखते हुए जहां दुर्गा मल्ल तथा दलबहादुर जैसे शूरवीरों ने देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया है, वहां शेरजंग तथा धनसिंह थापा जैसे बहादुरों ने देश की हिफाजत के लिए अद्भुत पराक्रम का परिचय देते हुए महावीर चक्र तथा परमवीरचक्र की उपाधियां प्राप्त कर ली हैं। इस परम्परा को बरकरार रखने के लिए दशहरा उत्सव का बहुत बड़ा योगदान है। अतः गोरखा लोगों द्वारा इस उत्सव को उमंग और उल्लास के साथ मनाया जाना स्वाभाविक ही है।

१४६२, श्यामनगर, धर्मशाला (कांगड़ा)।

"देश या समाज के विभिन्न जीवन-व्यापरों में या सामाजिक सम्बन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले उन आदर्शों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए।"

— डॉ० मंगलदेव शास्त्री

(भारतीय संस्कृति का विकास, प्रथम खण्ड पृ० 4

चच्योटी उपभाषा के प्रारूप पर एक दृष्टि

□ मोती लाल घई

भारत एक महान् देश है। इसकी लम्बाई अफगानिस्तान से लेकर आसाम तक कोई ३२०० कि. मी. और काश्मीर से लेकर आसाम तक लगभग २७७० कि. मी. है। इस समय इस विस्तृत देश की जनसंख्या सत्तर करोड़ से अधिक हो चुकी है। क्योंकि इस पृथ्वी पर हर बीस कि. मी. के पश्चात् लोगों के रहन-सहन, बोल-चाल और खान-पान में अन्तर होता जाता है अतः इतने बड़े देश में कई भाषाओं का होना स्वाभाविक है।

भारत सरकार ने १९५१ की जनगणना के अनुसार भारत में ८४५ भाषाओं और बोलियों को स्वीकार किया था। इनमें ६३ भाषाएं विदेशी थीं, और शेष भारतीय। इन में भी ऐसी भाषाएं बहुत ही कम हैं जिसमें विकसित और समृद्ध साहित्य की रचना की जा सके। अधिकांश साधारण बोल-चाल में आने वाली ही भाषाएं हैं जो अपने सीमित क्षेत्र में ही प्रयोग में लाई जाती हैं।

भाषा शास्त्रियों ने भारतीय भाषाओं को चार वर्गों में विभक्त किया है—(१) द्रविड़, (२) आर्य, (३) किरात तथा (४) निषाद। हमारे देश में दूसरे प्रकार की भाषा अर्थात आर्य भाषा का साहित्य ही सब से ऊंचा और समृद्ध माना गया है। वेद, पुराण, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक आदि सभी धार्मिक पुस्तकें इसी भाषा में रची गई हैं। उस समय इसे "वैदिक संस्कृत" कहा जाता था। लेकिन उस समय इस भाषा में एकरूपता नहीं थी। कुछ समय पश्चात् इस भाषा को अच्छी तरह संवार और सुधार कर एकरूपता लाई गई और इसे "लौकिक संस्कृत" का नाम दिया गया ताकि यह समान रूप से व्यवहार में लाई जा सके। धीरे-धीरे यह भाषा भी नियमों में बन्ध जाने के कारण जटिल होती गई और यह केवल पण्डितों की ही भाषा रह गई। स्त्रियों और शूद्रों के लिए यह भाषा वर्जित हो गई। कुछ समय पश्चात् इस भाषा का स्थान "प्राकृत" और "पाली" ने ग्रहण कर लिया। धार्मिक आन्दोलनों के परिणामस्वरूप बौद्धधर्म का प्रचार भी इसी भाषा में हुआ मगर कुछ समय पश्चात् प्राकृत भी नियमों में बन्ध गई और उसका स्थान "अपभ्रंश" ने ले लिया। अब संस्कृत केवल सीमित क्षेत्र में ही रह गई।

भारतवर्ष की प्राचीन जातियां किरात, खस, किन्नर, नाग आदि की निवासभूमि हिमालय का क्षेत्र रहा है। बाद में शक और हूणों ने भी इसी क्षेत्र में आकर शरण ली। आज यह बात

भी सिद्ध हो चुकी है कि आर्य इसी देश के निवासी थे। अंग्रेज और कुछ एक विदेशी साहित्य-कारों ने हमें सदैव अन्धकार में रखने का प्रयत्न किया और हमें अपने ही देश में बेगाने समझा जाने लगा। आज यह बात सर्वमान्य है कि आर्य कहीं बाहर से न आकर इसी देश के रहने वाले थे और उनकी भाषा संस्कृत थी। अविनाश चन्द्र दास और डी. एस. त्रिवेदी के अनुसार भले ही वे उस समय "सप्त सिन्धु" प्रदेश में रहते थे अथवा "त्रिविष्टप" में। 'त्रिविष्टप' प्राचीन समय में हिमालय के उन ऊंचे स्थानों को कहा जाता था जहां आजकल भी आबादी पाई जाती है। अगर इसमें सत्यता न होती तो इन स्थानों में बोली जाने वाली पहाड़ी भाषा के अन्दर संस्कृत के शब्द न पाए जाते, जैसे कि हिमाचल प्रदेश के बहुत से इलाकों में बोली-जाने वाली पहाड़ी भाषा के अन्दर पाए जाते हैं। हां, यह अलग बात है कि कुछ समय पश्चात् काल और परिस्थितियों के अनुसार इसमें काफी परिवर्तन आ गया हो। इस दृष्टि से मण्डी जनपद का भू-भाग चच्योट भी अभी तक अपनी एक अलग पहचान बनाए हुए है।

यह भू-क्षेत्र मण्डी जनपद के शेष भागों से कुछ भिन्नता लिए हुए है। इस क्षेत्र को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक अपर चच्योट और दूसरा लोअर चच्योट। अपर चच्योट को सराज भी कहा जाता है। थूनाग से ऊपर का क्षेत्र, घाटी हाट, थाची, सुंबल, धन्यार, च्युणी, डाहर, शिकारी धार से लगता क्षेत्र, छतरी से पीछे महुंती, बरयोगी बीहणी, कुल्लू की सीमा के साथ लगता गाड़ा गुसाई आदि भाग सराज के अन्तर्गत आते हैं। थूनाग से नीचे कांढा, छड़यांद धार, सियांज, गोहर, कोल्हू, तरौरधार और ज्युणी खड्ड का निचला इलाका लोअर चच्योट के अन्तर्गत रखा जा सकता है। क्योंकि लोअर चच्योट का सारा क्षेत्र मण्डी सदर की सीमा के साथ लगता है अतः ऊपरी क्षेत्र के साथ इसके रहन-सहन, बोल-चाल, वेश भूषा तथा भाषा आदि में अन्तर आना स्वाभाविक है। हो सकता है, कभी दोनों भागों की भाषा एक रही हो और परि-स्थितियों के बदलाव के कारण इसमें भिन्नता आ गई हो। हां, भाषा का मिश्रण थोड़ा बहुत जरूर दिखाई देता है।

ऊपरि क्षेत्र की अपनी अलग पहचान है। यहां का जनजीवन स्वभाव से शान्त, निश्छल निष्कपट, परिश्रमी और प्रकृति प्रेमी रहा है। यहां का मुख्य व्यवसाय, खेती बाड़ी करना, भेड़ बकरी पालना, लकड़ी चीरना, ऊन आदि के वस्त्र बनाना है। सवर्णों में यहां राजपूत जाति की अधिकता है, राजपूतों में भी खस और राठी अधिक मिलते हैं। ब्राह्मण बहुत कम हैं। अवर्णों में कोली और कहीं-कहीं चमार जाति मिल जाती है। शेष जातियां तो दिखाई ही नहीं देती। जो होंगी भी, वे बाद में ही आई होंगी। प्रकृति के अनुपम दृश्यों से परिपूर्ण इस क्षेत्र में देवी देवताओं की बहुलता रहती है। लोगों की इन पर अटूट आस्था है। इनके ऊपर से इनके विश्वास को डिगाना असम्भव है। प्रत्येक कार्य या संस्कार बलि प्रथा पर आधारित है। जलवायु ठण्डा है और अधिकांश लोग मांसाहारी हैं।

शिक्षा दीक्षा का इस क्षेत्र में नितान्त अभाव रहा है। राजाओं के युग में तो कहीं दो-चार ही पाठशालाएं थीं। फलतः लोग पढ़ लिख नहीं सके। चिट्ठी पत्री पढ़ाने के लिए लोगों को आठ, दस-दस मील जाना पड़ता था। सामन्तशाही का बोलबाला था। आर्थिक रूप से अधिकतर लोग

गुलाम थे। संगीत और नृत्य यहां के जनजीवन के रोम-रोम में बसा हुआ है। यहां के संगीत और नृत्य में जो मादकता, सरसता, मधुरता, प्रभावोत्पादकता और आकर्षण हैं, उसकी अपनी एक अलग पहचान और विशेषता है।

सारे क्षेत्र की भाषा ठेठ पहाड़ी और संस्कृतनिष्ठ रही है। इसमें तत्सम् और तद्भव शब्दों की प्रचुरता पाई जाती है। लिपि यहां भी टांकरी ही रही है। लिखने के लिए बान की स्याही और भोजपत्रों का प्रयोग भी होता था। भाषा में लचीलापन और सरसता है लेकिन उच्चारण का लहजा कुछ भिन्न है जिसे बाहर का व्यक्ति आसानी से नहीं सीख सकता।

शब्दों का प्रारूप :—

हिन्दी	चच्योटी	संस्कृत	हिन्दी	चच्योटी	संस्कृत
है	अस्ति/असा	अस्ति	नहीं है	नास्ति	नास्ति
मैं	आहं/हऊं	अहम्	वह	सोह	सः
क्या	किजे/क्यु	किम्	चलना	चालू	चल
पिछला कल	हीझ	ह्यः	परसो	फर्झ	पर्श्वः
बोलणा	बोदू	बद्	आना	आच्छा	आगच्छ
आगे	आगड़ू	अग्रे	रात	राच	रात्रि
कुत्ता	कुक्कर	कुक्करः	किसका	केसरो/केई	कस्य
			यह	इह	एषः
भूखा	भोछा	बुभुक्षितः	तोता	शू	शुकः
सफेद	सेता	श्वेत	लकड़ी	काठ	काष्ठः
धनुष	धहणा	धनुषः	आंख	हाछी	अक्षिः
मक्की	म्हयाछा	मक्षिकः	देवता	देऊ/देओ	देव
विलाव	बरयालो	बिडालः	खेत	खेच	क्षेत्रः
पाताल	प्याल	पातालः	यम	जम	यम
राक्षस	राक्श	राक्षस	यक्ष	जच्छ	यक्ष
देवी	देवी	देवी	मामा	माम	मातुलः

पुल्लिग	स्त्रीलिंग	पुल्लिग	स्त्रीलिंग
बापू/बाब	ईज	सोहरू	सोहरी
बौल्द	गाई	कुक्कर	कुक्करी
बरयालो	बरयाली	लाड़ा	लाड़ी
देऊ/देओ	देवी	जच्छ	जच्छण
राक्श	राक्शणी	ब्राह्मण	ब्राह्मणी
परोहत	परोहतणी	रुभ/भेडू	भेड
चीड़ू	चीड़ी	कोली	कोलन
चमार	चमारी	खस	खसणी

दाच	दाची	कुरहाड़ा	कुरहाड़ी
रीछ	रीछण	सोठा/सोठू	सोठी
झाड़	झाड़ी	स्याणा	स्याणी

नोट :- चच्योटी में बहिन को 'दाई' और बहिनोई को 'मित्र' कहा जाता है । चाचा, ताया को होछा बाब, बड़ा बाब, घराटी बाब, पुहाल बाब, शिमलू बाब तथा ताई, चाची को बड़ी ईज और होछी ईज कहकर सम्बोधित किया जाता है । इसी तरह पोते को 'पोचा' और पोती को 'पोची' पुकारा जाता है ।

एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
किल्टा	किल्टे	झिकड़ा	झिकड़े
फुल्का	फुल्के	पोथा	पोथे
रोटी	रोटियां	दाची	दाचियां
पतीला	पतीले	जोगणी	जोगणियां
चिमटा	चिमटे	पलयांज़ा	पलयांज़े
दरवाज़ा	दरवाज़े	घड़ा	घड़े
पोचा	पोचे	बुढ़ड़ा	बुढ़ड़े
खपरा	खपरे	स्याणा	स्याणे
गीठा	गीठे	थालू	थालू

नोट :- यहां कुछ शब्दों को उल्टा कहने की आदत है । उदाहरण के लिए पतीले को 'तबीला' बन्दूक को 'दमूक' मसाले को 'समाला' आदि

संज्ञा शब्द :

1 जाति वाचक :- माहणु, गाड़, पंछी, डांगरे, खेत्र, झिकड़ा, गहणे, डाल, बांदर, देऊ, दरयाओ, नगर, पाथर, बीऊ, जनाना, काठ, भाण्डे, आदि ।

2 व्यक्ति वाचक :- मोहण, शनीचरू, शुकरू, त्वारी, मुंगली, बुधी, हाढ़ी, सावण, कौंतर, काओं, कन्योजू, ब्लाक, कलेशा, नाख, आलू, नगाले, बान, केलो, आदि ।

3 भाव वाचक :- चलाकी, बदंगी, रंडयापा, हासी, सलयाई, झमाई, बकबक,लाज, हरयाई, कड़याई, अक्कड़, गरीबी, कालख, चकणयाई, लड़ाई, झगड़ा, भलयाई, हार आदि, ।

4 द्रव्य वाचक :- लोहा, टीन, लूण/नीमक, गूड़, सुन्ना, रूपा, पीठा, घीऊ, आदि ।

5 समूह वाचक :- जाच, टब्बर, फौज, जमात, थेहड़, डार, ठाठ (भेड़ बकरियों के लिए प्रयुक्त होता है) ।

सर्वनाम :

हिन्दी	चच्योटी	हिन्दी	चच्योटी
मैं	आहं/हऊं	हम, हमें, हमको	हम्हा, हम्हें

मेरा, मेरी	मेरो/मेरी	हमारा, हमारी	म्हारा/म्हारो
मुझ, मुझे, मुझको	मांह/मुंजो	तू, तुम, आप	ताह
तेरा, तेरी, तुम्हारा	थारा/थारी/थारो	वह	सोह
वे	त्यों	उसने	तेई
इसने	येई/इने	उन्होंने	तिन्हें
यह	इह		

विशेषण :- नाहुंगा, छड़ेवणा, मिल्ला, लुणका, चलाक, सेता, पीउला, काला, खोटा खरा, माड़ा, सोहणा, छैल, दूजा, तरीजा, दुगणा, चौगणा, सराजी, ग्रांवीं, होछा, भोछा, कुष्टी, कोढ़ी, लड़ाकू, डूंघा।

क्रिया :- बाचणा, खाणा, पीणा, सीऊणा, परोणा, धोणा, डेवणा, चोड़णा, सुतणा, चाखणा, खुणणा, जागणा, छाड़णा, छाड़ंणा, फड़ाकणा, खाड़ना, भेजणा।

अव्यय :- एभे, तेभे, अबे, कबे, तोल, गैंस, उभे, उझे, ऊंबे, ईंधी, कींधी, तिधी, जिधी, हुण, कुण, ओरे, पोरे, उहरी, पुहरी, छेका, सुले, हीझ, फर्झ, चटचटा, पटापट, टांटी टोर, येई, तेई, छिः शाबास, राम-राम,

कारक :- निम्नलिखित उदाहरणों से इस भाषा के कारक-चिन्ह भी स्पष्ट हो जाते हैं—

1 **कर्त्ता** ने (ए)	मोहणे स्लेट चोड़ी डाही। (मोहन ने स्लेट तोड़ दी)
2 **कर्म**-- को (वे)	सोहणा वे रोटी दे। (सोहन को रोटी दो)
3 **करण**– से, (करे) के साथ	मांह असा ताह करे काम। (मुझे तुझ से काम है।) आंह रामा सावगी माण्डी नाठा। (मैं राम के साथ मण्डी गया)
4 **सम्प्रदान** के लिए (जोगी)	इह झिकड़ा मांह जोगी असा। (यह कपड़ा मेरे लिए है)
5 **अपादान** – से (का)	राम शामा का नाहुंगा असा। (राम श्याम से सुन्दर है)
6 **सम्बन्ध**—रा, रे, री, रो आदि	इह खेच केसरो असा (यह खेत किस का है?)
7 **अधिकरण** में (मंझा)	कोठे मंझ पिठा डाहीं। डाह्व। (सन्दूक में आटा रख दो) डाला गैंस बान्दर बैंशी रा। (वृक्ष पर बंदर बैठा है)

8 सम्बोधन	हे, ऐ (आरा, ओए)	आरा मोहणा इंधी तका आच्छ
	अरे, ओ, ओ	(अरे मोहन इधर तक आ)
		ओए मोहणा तू किधी चालुरा ?
		(ओ मोहन तू कहां जा रहा है?)

काल निर्धारण :

बर्तमान काल —	सोहरू रूंदा लागी रा।
	(बच्चा रो रहा है)
	मांह बड़ी भोछे आई री।
	(मुझे बड़ी भूख लगी है)
	आहं बड़ा भोछा असा।
	(मैं बहुत भूखा हूं)
	तू किजे बोदा ले।
	(तू क्या बोलता है?)
भूत काल—	तेई पोथी बाची।
	(उसने पुस्तक पढ़ी)
	सोह माण्डी नाठा।
	(वह मण्डी गया)
	त्यों इंधी का हुण नाठे।
	(वे लोग यहां से अभी गए हैं)
	सोहरी तिधी थी रूंदी लागी री।
	(लड़की वहां रो रही थी)
भविष्यत् काल —	मांह पोथी आपू बाचणी।
	(मैं पुस्तक स्वयं पढ़ूंगा)
	तेई माण्डी शैहरा डेवणा।
	(वह मण्डी शहर जायेगा)
	येई वर्षा मेरी दाई रा ब्याह हुणा।
	(इस वर्ष मेरी बहिन की शादी होगी)
	ताह किजे खाणा ?
	(तू क्या खायेगा?)

अध्यापक,
ग्राम व डाक घर-गुरकोठा,
जिला मण्डी, (हि० प्र०) 175036

कांगड़ी लोक विश्वास

रमेश चन्द 'मस्ताना'

प्रत्येक मनुष्य की यह स्वाभाविक इच्छा एवं प्रयास रहता है कि उसके द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य का परिणाम या अन्त सुखद एवं शुभ हो। इस सुखद एवं शुभ परिणाम को प्राप्त करने के लिए कांगड़ा के जनमानन में प्रचलित लोक विश्वासों को शुभ शकुनों के रूप में दुगने-चौगुने उत्साह के साथ स्वीकार किया जाता है। जिस व्यक्ति के द्वारा शुभ शकुन होता है वह उसका उतना ही कृपापात्र एवं स्नेह का भागी बन जाता है। यहां तक कि ऐसे विश्वस्त आदमी को वह प्रत्येक शुभ कार्य पर जाने से पहले मिलना एवं लौट कर धन्यवाद करना नहीं भूलता है। कभी-कभी मनुष्य के अपने शरीर के अंग भी आने वाली घटनाओं के संकेत देते हुए जान पड़ते हैं कब किसी से मिलना होगा, कब कोई सुखद समाचार सुनने को मिलेगा, कब कोई सुन्दर वस्तु देखने को मिलेगी—इन बातों का पता भी अंगों के फड़कने या किसी अन्य क्रिया द्वारा चलता है। कभी-कभी समय के चक्कर के कारण किसी से गालियां सुनना भी शुभ शकुन माना जाता है। इस प्रकार के कई शुभ शकुन सामान्य जन-जीवन में अपना स्थान बना चुके है कि प्रत्येक व्यक्ति इन्हें हृदय से स्वीकार करता चला जाता है। कांगड़ा के जनमानस में जो शुभ शकुन प्रचलित हैं उनका विवरण यह है—

१ अचानक ही कोई कुत्ता बिना बुलाए बाहर से आकर घर के दरवाजे के सामने अंगड़ाइयां लेना शुरू कर दे तो किसी मेहमान के आने का शुभ संकेत माना जाता है।

२ नया मकान बनाने से पहले उस ज़मीन की उचित जांच पड़ताल एवं शुभ महूर्त अवश्य देखा जाता है। नींव खोदने से पहले शाम को अनुमानित नींव के चारों कोनों पीपल के पत्तों पर साबुत चावलों के सात-सात दाने रख देने चाहिए। अगर सुबह के समय उन चारों कोनों पर वही चावल पूरे के पूरे हों तो मकान बनाना अति शुभ समझा जाता है। और यदि किसी कोने के चावल कम हों तो उस जगह का कुछ इलाज (झाड़ फूंक द्वारा) अवश्य करवा कर ही मकान बनाना चाहिए।

३. मकान की नींव को खोदते समय यदि 'सारस' नामक पक्षी अपनी आवाज (कूंज) करे तो वह मकान सबके लिए शुभ माना जाता है। और यह कूंज मकान के श्रीगणेश से इतिश्री तक शुभता का प्रतीक मानी जाती है।

४ सुबह बिस्तर से उठते समय किसी दूसरे व्यक्ति का मुंह देखने की अपेक्षा यदि अपनी हथेलियों को देखा जाए तो पूरा दिन भर शुभ चीजें देखने को मिलती हैं और दिन भी अच्छा व्यतीत होता है।

५. इसी प्रकार सुबह बिस्तर से उतरते पर धरती की वन्दना करना भी शुभ माना जाता है।

६ सुबह बिस्तर से उठते समय यदि पायजामें का पऊंचा मुड़ा हुआ या पलटा हुआ हो तो वह किसी मेहमान के आने का शुभ शकुन मना जाता है।

७ बावड़ी या कुएं में पानी का घड़ा भरते हुए अचानक कोई घास का तिनका घड़े में आ जाए तो वह भी मेहमान के आने का संकेत माना जाता है।

८ यदि घर पर आए किसी मेहमान को बैठने के लिए बिन्ना (आसन) दिया जाए और वह उस बिन्ने पर न बैठ कर दूसरी जगह बैठ जाए तथा वह बिन्ना खाली रह जाए तो भी किसी अन्य मेहमान के आने की आशंका रहती है।

९ बालों को कन्घी करते समय यदि अचानक ही कन्घी छूट कर पिछली ओर गिरे ती यह भी किसी मेहमान के आने का शुभ शकुन माना जाता हैं।

१० अचानक ही छींक आने पर किसी मित्र-स्नेही द्वारा याद किए जाने का शुभ संकेत माना जाता है।

११ रोग-शैय्या पर पड़े व्यवित को भी छींक आनी शुभ मानी जाती है। विचार किया जाता है। कि छींक रोगी के ठीक होने का लक्षण हैं।

१२ कभी-कभी चूल्हे में जलती हुई लकड़ी से गैस निकलती है जिससे आग भुड़भुड़ाती है। इसे भी किसी के द्वारा याद किए जाने का संकेत मान कर किसी नजदीकी मित्र-स्नेही या रिश्तेदारों के नाम या रिश्ते गिनाए जाते हैं। जिस नाम पर आग भुड़भुड़ाना बन्द हो जाए उसी के द्वारा याद करने का संयोग समझा जाता है।

१३ किसी भी शुभ कार्य को जाने से पहले घर से दही, साग या मीठा पकवान खाकर जाते हैं। विश्वास किया जाता है कि इससे प्रत्येक कार्य में पूरा होता है।

१४ किसी भी व्यक्ति के घर से बाहर (नौकरी) आदि पर (विशेषतः) जाने पर सबसे पहले ताजा पानी लाने की परम्परा हैं। तदोपरान्त दूसरे कार्य किए जाते हैं। पानी लाना उसकी यात्रा के लिए शुभ माना जाता है।

१५ चैत मास की संक्रान्ति को सुबह ही सर्वप्रथम डोम जाति से चैत महीने का नाम सुनना (चैती-गाथा) पूरे वर्ष के लिए शुभ समझा जाता है।

१६ शनिवार के दिन तेल की शीशी का अचानक टूटना या तेल का गिरना भी शुभ माना जाता है। इससे उसके सिर चढ़ा शनिचर ग्रह एवं कई अन्य बुरे ग्रह दूर हो जाते हैं।

१७ भादों महीने के चार प्रविष्टे को जिसे पत्थर-चौथ भी कहा जाता है, किसी से भी गालियां सुनना शुभ माना जाता है। उस दिन बच्चे या बड़े भी जानबूझ कर किसी पड़ौसी के घर पर कंकड़-पत्थर मार कर उन्हें गुस्सा दिलवा कर गालियां सुनते हैं। इससे विश्वास किया जाता है कि फिर वर्ष भर अच्छा ही अच्छा सुनने को मिलेगा।

१८ दूज का चांद और वह भी विशेषतः भादों महीने का देखना अति शुभ होता। दूज के चांद को देखने के उपरान्त आगे के दिनों का कोई भी चांद जो अशुभ होता हैं अगर दीख भी जाए तो उसका कोई दुष्प्रभाव नहीं होता।

१९ जलते हुए (धुखते हुए) धूप के धुएं में से यदि अचानक ही ज्वाला सी उठती हुई ऊपर धुएं के साथ उठे तो उसे देवता या ईश्वर के प्रसन्न होने का संकेत समझा जाता है।

२० चलते-चलते अचानक अपने पैर के ऊपर यदि दूसरे व्यक्ति का पैर आ जाए तो उस दिन किसी मेहमान के पहुंचने की संभावना रहती है।

२१ पुरुष के दायीं आंख का फड़कना और स्त्री की बायीं आंख का फड़कना शुभ समझा जाता है और विश्वास किया जाता है कि उस दिन अवश्य कोई अच्छी वस्तु देखने को मिलेगी।

२२ जैसे (कन्धों और कोहनी के बीच का भाग) अगर फड़के तो वह किसी स्नेही व्यक्ति से मिलन का शुभ संकेत माना जाता है।

२३ खारी (डोम के द्वारा बनाई गई बांस की एक खुली टोकरी, जिससे अनाज की पेराई की जाती है,) को अनाज की ढेरी पर सीधा करके रखना शुभ मानते हैं। उसे उल्टा रखना अनाज की बरकत (वृद्धि) में बाधक माना जाता है।

२४ सर्पों को आपस में लिपटे हुए देखना शुभ माना जाता है। विशेषकर नाग जाति के सापों को लिपटे हुए कोई व्यक्ति देख ले और साहस करके उन पर कोई कपड़ा ओढ़ा दे तथा स्वयं वहां से हट जाए तो बाद में उस कपड़े द्वारा उस व्यक्ति की सभी मनचाही इच्छाएं नागों की कृपा से सम्पूर्ण हो जाती हैं। ऐसा व्यक्ति बहुत भाग्यशाली समझा जाता है।

२५ मीणे सीगों वाला पशु अर्थात जिस पशु के सींग नीचे को लटकते हुए हिलते रहतें हों, उस परिवार के लिए बहुत भाग्यशाली समझा जाता है।

२६ शादी के समय जब दूल्हा बारात लेकर ससुराल पहुंचता है और लग्न-संस्कार के उपरान्त वर-वधु का प्रथम मिलन—'मंहुदिष्टा' (वह संस्कार जिसमें वर वधु को एक लाल दोशाला ओढ़ा कर एक दूसरे का मुंह दिखाया जाता है) में यदि दोनों मुस्करा कर प्रसन्नचित से एक दूसरे का स्वागत करें तो यह प्रथम मिलना बहुत ही शुभ माना जाता है । विश्वास किया जाता है कि यह प्रसन्नता पूर्वक निभाया गया शकुन पूरी आयु के लिए निर्णायक सिद्ध होगा ।

२७ शिबा नामक जानवर जो कि नेवले सा होता है और इसे यहां अधिकांशतया 'फौकी' के नाम से जाना जाता है, उसका बोलना काफी अशुभ समझा जाता है परन्तु यदि उसकी आवाज रोनी-सी हो तो वह किसी शकुन का संदेश होती है। दूसरी और यदि उसके बोलते समय ही किसी बच्चे के का जन्म हो जाए तो उसका बोलना बच्चे के लिए अति शुभ शकुन माना जाता है । विश्वास किया जाता है कि इससे उस बच्चे के सभी बुरे ग्रह दूर हो गए हैं ।

किन्तु मनुष्य के द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य का परिणाम उसके लिए सुखद एवं शुभ ही हो ऐसा पूर्णतया संभव नहीं होता है । कई बार उसे कार्य के परिणाम तक पहुंचने से पहले ही किसी ऐसी घटना या व्यक्ति के संकेत का पता चल जाता है जिससे उसकी असफलता की संभावना हो जाती है, वह व्यक्ति या घटना उसके लिए अपशकुन हो जाती है ।

प्रत्येक घटना या कार्य का शकुन या अपशकुन में बदलना समय एवं परिस्थितियों पर भी ज्यादा निर्भर करता है । अवसर विशेष पर घटना या व्यक्ति विशेष का मिलना ही शकुन या अप-शकुन माना जाता है । शकुन या अपशकुन अपना अधिकांशतः प्रभाव आकस्मिकता की स्थिति में ही छोड़ते हैं । फिर भी कई बार मनुष्य स्वयं दूसरे के लिए शकुन हेतु ही अपने प्रयास करता है ।

कांगड़ा के जनमानस में कुछ ऐसे अपशकुनों का निदान भी साथ ही साथ बतलाया जाता है ताकि अपशकुन होने की स्थिति में भी उसके प्रभाव से बचा जा सके । यद्यपि सब कुछ मनुष्य के अपने हाथ में नहीं होता है, कुछ ईश्वर प्रदत्त परिणाम भी होते हैं, फिर भी अगर मनुष्य शुभ शकुन में चले या अपशकुन होने पर उचित निदान कर ले तो उसे असफलता की दशा में भी उतना दुःख एवं पश्चाताप नहीं होता है ।

अतः शुभ शकुनों के साथ-साथ अशुभ शकुनों का भी समाज में अपना एक विशेष स्थान है । इस प्रकार के लोक विश्वासों के साथ यहां के जनमानस की आस्था एवं सत्यता जुड़ी हुई है । इन अपशकुनों से सम्बन्धित जो लोक विश्वास यहां के जनमानस में प्रचलित हैं, उनका विवरण इस प्रकार है : -

१ सोते समय यदि आचानक बिना बुझाए जलता हुआ दीपक बुझ जाए तो इससे उस परिवार पर किसी विपत्ति के टूट पड़ने या किसी व्यक्ति की मृत्यु का संकेत माना जाता है ।

२ कौआ यदि किसी पर विष्टा (बीठ) कर दे तो यह अशुभ शकुन किसी छूत रोग के लगने का संकेत माना जाता है। इस दशा में घर के बाहर ही नहा धो कर, नए कपड़े पहन सतनाजा न्योछावर करके चौराहे में फैंकने के बाद ही घर के अन्दर उस व्यक्ति को आने दिया जाता है।

३ किसी कार्य को जाते समय यदि सांप रास्ता काट दे तो वह काम नहीं बनता है। फिर भी विश्वास किया जाता है कि अगर सांप दाहिनी ओर को जाए तो अच्छा है। परन्तु ऐसी दशा में सांप के रास्ते से हट जाने पर एक हरा पत्ता तोड़कर रास्ते में रखना और उस पर से पार होना अपशकुन का निदान समझा जाता है।

४ सांप की ही भांति अगर बिल्ली रास्ता काट दे तो यह भी अपशकुन समझा जाता है। उस रास्ते को भी कुछ देर रुक कर जूते उतार कर, दोबारा पहनने के पश्चात् ही पार करते हैं।

५ पैर से जूते उतारने के बाद यदि कोई जूता उल्टा हो जाए या दूसरे के ऊपर चढ़ जाए तो भी अपशकुन समझा जाता है। विश्वास किया जाता है कि अब दूसरे दिन अवश्य कोई दौड़ धूप वाला काम पड़ेगा।

६ किसी शुभ एवं विशेष कार्य को जाते समय घर से निकलते ही अचानक दूसरा व्यक्ति छींक मार दें तो आगे जाने पर वह काम कभी भी नहीं बनता है और व्यक्ति को खाली हाथ लौटना पड़ता है।

७ बुधवार एवं शनिवार के दिन किसी भी व्यक्ति का पहाड़ की ओर जाना अपशकुन समझा जाता है। विचार किया जाता है कि आगे जाकर उसका बना बनाया काम भी बिगड़ जाएगा।

८ खाना खाते हुए हाथ या मुहं के पास से कौर गिर कर नीचे थाली में पड़ जाए तो दूसरे दिन ऐसी सम्भावना होती है कि कोई ऐसा काम पड़ेगा जिससे उसे भूखा ही रहना पड़ेगा।

९ खाना प्रारम्भ करते हुए छींक मारना शुभ परन्तु बीच में या खाने की समाप्ति पर दूसरे व्यक्ति द्वारा छींक मारना अपशकुन माना जाता है। इससे भी दूसरे दिन भूखे रहने का ही संकेत समझा जाता है।

१० घर के दरवाज़े के सामने केले का वृक्ष लगाना या होना बहुत बड़ा अपशकुन समझा जाता है। इससे किसी अनिष्ट की संभावना मानी जाती है।

११ इसी प्रकार घर के मुख्य द्वार के सामने पड़ोसी के मकान के पिछबाड़े का छरैतड़ (जहां से बर्तन को साफकर पानी गिराया जाता है) भी अपशकुन माना जाता है। इसलिए पड़ोसी को दरवाज़े के सामने यह छरैतड़ बनाने की अनुमति कदापि नहीं दी जाती है।

१२ भरा हुआ घड़ा यदि चलते-चलते गिर करके सिर या छाती पर टूटे तो यह किसी विपत्ति के टूट पड़ने या बीमार होने का संकेत समझा जाता है।

१३ शादी हेतु खरीदे गए सामान को शादी से पूर्व या शादी पर अचानक आग लग जाए तो यह शादी के लिए बहुत बड़ा अपशकुन समझा जाता है। और इसका परिणाम भविष्य में कोई ना कोई दुर्घटना ही माना जाता है।

१४ इसी प्रकार शादी में डोली या सुखपाल की आगेवाली (बास की वह दो लम्बी बल्लियां, जिन पर सुखपाल कसा जाता है) को उठाते ही टूट जाना अपशकुन समझा जाता है ! इस अपशकुन से बचने के लिए उसी समय पेठे की पालकी पर बलि दी जाती है।

१५ छाज (सूप) को उल्टा करके रखना (अर्थात छाज का वह सिरा जिससे थोथा अनाज बाहर को फटका जाता है, ऊपर की ओर करके) भी अपशकुन समझा जाता है। इससे घर के अन्न की बरकत (वृद्धि) के चले जाने का खतरा होता है।

१६ टूटते हुए तारे का दिखाई देना भी अपशकुन होता है। इससे किसी मित्र-स्नेही या रिस्ते-दार के टूटने (सदा के लिए विदा होना) की संभावना रहती है।

१७ केले का साबुत पत्ता घर के अन्दर लाना भी अपशकुन होता है। क्योंकि इसे उसी समय घर लाते हैं, जब कोई मर गया हो। मृतक को केले के पत्ते पर लिटाकर अर्थी पर रखा जाता है।

१८ किसी के टिपड़े (जन्म-पत्री) का गुम होना भी उस व्यक्ति के लिए अपशकुन होता है।

१९ शादी के पहले या शादी में लखनोतरी (वह पत्री जिसमें शादी की तारीख, लग्न व अन्य मुहूर्त लिखे होते हैं) का खो जाना भी उस दम्पति के लिए अपशकुन माना जाता है। इससे दाम्पत्य का जीवन कष्टमय होने की आशंका रहती है।

२० दीये को जलाकर चारपाई पर रखना भी अपशकुन, समझा जाता है।

२१ हरे बांस को पत्तों समेत घर लाना भी अपशकुन माना जाता है। क्योंकि यह भी उसी समय लाया जाता है, जब घर में किसी की मृत्यु हो गई हो।

२२ मांज (सीढ़ी) को भी दो या चार व्यक्ति नहीं उठाते हैं। क्योंकि यह भी मृतक की अर्थी उठाने की ही दशा में होने के कारण अपशकुन माना जाता है।

२३ टोकरी, मटका एवं झाड़ू घर के अन्दर एक जगह पर इकट्ठा रखना भी अपशकुन होता है। क्योंकि यह चीज़ भी किसी की मृत्यु के उपरान्त ही दसवें दिन किसी एकान्त एवं उजाड़ जगह पर रखने की परम्परा है।

२४ किसी कार्य को जाते हुए घर से निकलते ही रास्ते में खाली घड़ा, दर्जी, सुनार या विधवा स्त्री का मिलना भी अपशकुन समझा जाता है। इन सभी को इस प्रकार कहा जाता है —

सोई (दर्जी) सप्प सुनयार,
खाली घड़ा ते विधवा नार।

इनके मिलने पर भी आगे का काम नहीं बनता है और खाली ही लौटना पड़ता है।

२५ कुत्ते या बिल्ली का घर के इर्द-गिर्द रोना बहुत बड़ा अपशकुन माना जाता है यह किसी अनिष्ठ की सूचना समझी जाती है।

२६ भादों महीने में भन्डौर (जंगली मधु-मक्खियों) का दिखना भी अपशकुन समझा जाता है।

२७ सूर्यास्त के बाद या सुबह चार बजे से पहले मुर्गे का बांग देना उस घर के लिए अशुभ समझा जाता है।

२८ इसी प्रकार मुर्गी का बांग देना (किसी भी समय) बहुत बड़ा अपशकुन माना जाता है। घर के किसी की मृत्यु का संकेत समझा जाता है। ऐसी दशा में मुर्गे या मुर्गी की घर के ऊपर बलि दे दी जाती है।

२९ रोग शैय्या पर पड़े हुऐ रोगी का पीठ के बल सोना एवं बिना नींद जम्हाइयां लेना भी अशुभ होता है। इससे उसके स्वस्थ होने की संभावनाएं समाप्त प्रायः समझी जाती हैं।

३० चतुर्थी का चद्रमा देखना भी अपशकुन होता है। परन्तु यदि इससे पूर्व द्वितीया का चन्द्रमा देखा हुआ हो तो चतुर्थी के बुरे ग्रह का प्रभाव नहीं पड़ता है। फिर भी अगर चतुर्थी का चांद दीख ही जाए तो किसी के घर पर पत्थर फैंक कर उससे गालियां सुन करके इसके प्रभाव से मुक्त होते है। विश्वास किया जाता है कि यह गालियां लौट कर देने वाले को ही लगती हैं।

३१ भादों महीने की चतुर्थी का चांद सबसे अधिक अपशकुन वाला होता है और अगर इस चांद की परछाईं अचानक पानी में दीख जाए तो उस व्यक्ति की दुर्घटना आदि में मृत्यु तक हो जाने की भी संभावना हो जाती है।

३२ दरवाज़े की सांकल एवं चूल्हें के पास चिमटे का बजाना भी अपशकुन होता है इससे घर में कलह होने की संभावना रहती है।

३३ त्रिड़ा पक्षी (कठफोड़वा) का बोलना भी अशुभ समझा जाता है। इसलिए उसके बोलते ही दो चार बार थूका जाता है।

३४ पुरुष की बायीं आंख का और स्त्री की दायीं आंख का फड़कना भी अशुभ समझा जाता है।

३५ बात-बात में किसी व्यक्ति द्वारा कन्धों को उचकाना भी अपशकुन समझा जाता है। ऐसा व्यक्ति विश्वास के योग्य नहीं माना है।

३६ चूल्हे पर रखे हुए तवे के नीचे यदि तारों की जगमगाहट की तरह आग सी लग जाए तो वह किसी कपटी या इर्ष्यालु व्यक्ति के द्वारा उस परिवार से सम्बन्धित मैंहजर (कुभावनाएं रखते हुए इर्ष्या भरी बातें करना) डालने का अशुभ संकेत माना जाता है। ऐसी दशा में तवे को बर्तन साफ करने वाली जगह पर रख कर जूठी थाली का पानी छिड़क देते हैं।

३७ घर के अन्दर घूग्गी (फाख्ता) द्वारा घौंसला बनाना एवं अण्डे देना अपशकुन माना जाता है। इससे घर का कोई न कोई व्यक्ति अवश्य काल का ग्रास बनता है। अतः घूग्गी को घर में घुसते ही मार देने की कोशिश की जाती है।

३८ खाना खाते समय यदि कोई बच्चा अगर अपनी तर्जनी को कौर से व अन्य अगुलियों से अलग खड़ी करके रखे तो यह भी उस परिवार में से किसी न किसी की मृत्यु का संकेत समझा जाता है इसलिए ऐसे बच्चे की इस आदत को बहुत जल्दी डांट-फटकार या मार द्वारा समाप्त करने की कोशिश की जाती है।

३९ कई बार कोई पशु अपने खूंटे के इर्द-गिर्द घूमते ऊपर की ओर देखते हुए गर्दन पीछे की ओर मोड़ना प्रारम्भ कर दे तो यह भी अपशकुन समझा जाता है। क्योंकि गर्दन पीछे की ओर मोड़ने का यह अर्थ लगाया जाता है कि वह उस परिवार की अवनति अर्थात पीछे की ओर हटने का इशारा करता है। इसी लिए ऐसे पशु को जल्दी ही बेचने की कोशिश की जाती है।

काले महीने (भादों) में सूने (बच्चा देने) वाली काली गाय एवं बुद्धवार को ब्याने वाली भैंस अशुभ समझी जाती है। विशेषकर उस स्त्री-पुरुष के लिए जिसने उस गाय व बच्चे को सबसे पहले देखा हो।

इस प्रकार कांगड़ा जनपद के लोग आज भी इन लोक विश्वासों के दायरों में इस तरह अपने को विश्वस्त एवं सुरक्षित पाते हैं कि इन सब परम्पराओं को अपने जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग समझकर कदम-कदम पर बहुत श्रद्धा पूर्वक एवं आग्रह के साथ निभाते चलते हैं। लोक-विश्वासों का यह ज्योतिष एवं सुखद भविष्य के शकुन पीढ़ी दर पीढ़ी बजुर्गों के द्वारा धीरे-धीरे आस्था एवं विश्वास के साथ आगे की ओर सरकाए जाते हैं और यहां का प्रत्येक जनमानस इनके प्रति अपने हृदय में स्थान बनाए हुए जीता है।

राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, गढ़ जमूला,
तह० पालमपुर, ज़िला कांगड़ा, हि० प्र०

श्री तारा देवी

□ लक्ष्मण सिंह कश्यप

इससे पूर्व कि 'श्री तारा देवी' के विभिन्न रूपों और मान्यताओं पर उपलब्ध लिखित तथा संचित सामग्री के आधार पर मत व्यक्त करूं, एक बात अनुभव और अनुभूति के आधार पर पूर्णतयः स्पष्ट कर देना चाहता हूं। केवल एक आस्था, पूर्ण श्रद्धा के आधार पर 'मां' के सभी रूपों को एक समान और 'मां' को आदि शक्ति और उत्पत्ति का मूल मानता हूं। जब तक 'मां' की कृपा नहीं हो जाती इस भवसागर से पार उतरना और मां के माया-मोहिनी रूप से पार पाना कठिन ही नहीं अपितु दुर्लभ भी है। जब जग जननी मां की कृपापूर्ण दृष्टि प्राप्त हो जाये तो यह पंचभूतों की काया स्वतः ही सांप की केंचुली की तरह छूट जाती है और उस कृपामयी मातेश्वरी को ही भवतारणी अथवा 'श्री तारा देवी' के नाम से जानना चाहिये। नाम और रूप के मायाजाल भी उसी ममतामयी 'मां' की लीला के अभिन्न अंग है अतः महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती आदि सभी नाम उसी के हैं। दुर्गा कवच में ब्रह्मा जी के मुख से अधिष्ठात्री नव देवियों के नाम इस प्रकार कहे गये, शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघंटा, कुश्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, और सिद्धिदात्री। इसके साथ चामुण्डा, चण्डिका, वाराही, अम्बां, अम्बालिका आदि सभी उसके नाम, गुण, रूप और काल गणना तथा कार्यसिद्धि हेतु ग्राह्य पद आभूषण हैं। वास्तव में उसका एक ही नाम है 'मां' और भवतारिणी के रूप में उसे 'श्री तारा देवी' के नाम से बौद्ध ग्रन्थों में जाना जाता है।

एक बात और! हमने इस समाज को पुरुष प्रधान समाज का रुप दिया है और ऐसा करने में भी पुरुषों का ही हाथ है। या कहें पुरुष का अहं ही उसकी घोर अज्ञानता का कारण है तभी तो हम आदि शक्ति 'मां' को मुख्य स्थान न देकर केवल अमुक देव की शक्तिरुपा कह कर पुकारते हैं। यथा शिव की शक्ति 'मां' पार्वती, विष्णु की लक्ष्मी और ब्रह्मा की सरस्वती आदि। तथापि यदि पुरुष 'अहं' को छोड़ वास्तविकता को समझें तो स्पष्ट हो जायेगा कि 'मां' वास्तव में मूल है, आधार है उत्पत्ति का और वही 'मां' कारण है भवतारण का। पुरुष रुप भी उसी से उत्पन्न और व्यक्त है अन्यथा एकांगी वह स्वयं शक्ति विहीन और नितान्त पंगु मात्र है। अतः यही कारण है कि 'मां' आदि शक्ति और मूलाधार है इस सृष्टि की। इस कारण भी उसके विषय में कुछ कहना और व्यक्त करना मात्र अज्ञानता का ही प्रदर्शन होगा, क्योंकि उसके मूल को तो वही जान सकती है।

दुर्गा सप्तशती में अनेकों देवियों के नामों का उल्लेख मिलता है और उनका आह्वान शरीर के विभिन्न अंग प्रत्यंगों की रक्षा हेतु करने का विधान दिया गया है । प्रत्येक देवी का वाहन का भी वर्णन किया गया है । जैसे श्री चामुण्डा देवी का वाहन प्रेत, वाराही का बैल, भैंस ऐन्द्री का हाथी, वैशणवी का गरूड़, श्री माहेश्वरी का बैल, कौमारी का मोर, श्री लक्ष्मी जी कमलासन, ईश्वरी का बैल और ब्रह्मी देवी हंस पर आरूढ़ रहती है । तथापि मूल रुप में यह सभी रुप जगत जननी मातेश्वरी के ही हैं और उन्हीं की आराधना करते हुए कामना की जाती है कि हे देवी मैं तुम्हारी शरण में आया हूं आप मेरी सब ओर से रक्षा करें । पूर्व दिशा में ऐन्द्री रक्षा करें, दक्षिण दिशा में वाराही, नैऋत्यकोण में खण्डधारणी वारूणी देवी पश्चिम दिशा में मृगवाहिनी हमारी रक्षा करें । उत्तर में कौमारी, ईशान कोण में शूल धारणी, नीचे से वैशणवी रक्षा करें । दस दिशाओं में चामुण्डा, आगे से जया और पीछे से विजया हमारी रक्षा करें । इस प्रकार और अनेकों देवियों के नाम और उपनामों का वर्णन पुराणों में प्राप्त है । मुख्यत: इनमें अजिता, अपराजिता, उद्योतिनी उमा, मालाधारी, यशस्वनी, त्रिनेत्रा, यमघण्टा, शंखिनी, कालिका, शांकरी, सुगन्धा, चर्चिका, अमृतकला, चित्रघण्डा, घण्टिका, महामाया, कामाक्षी, सर्वमंगला, भद्रकाली, धनुर्धरी, नील-ग्रीवा, शूलेश्वरी, कुलेश्वरी, महादेवी जी, ललिता, शूल धारिणी, कामिनी, पूतना, महीष वाहिनी, भगवती विन्ध्यवासि महाबलिदेवी, नारसिंही, तेजस्वीदेवी, श्री धरा देवी, स्थल वासिनी देवी, दंश्ट्राबलि, ऊर्ध्वकेशिनी, बागेश्वरी, पार्वतीदेवी, मुकुटेश्वरी, पद्मावती, चूड़ामा ज्वालामुखी, अभेषा, श्री ब्रहमाणी, छत्रेश्वरी, श्री धर्म चारिणी, ब्रजहस्ता, शोभना, योगिनी, नारायणी, चक्रिणी, इन्द्राणी, भैरवीदेवी, सुपथा, मोक्षकारी विजया, जयन्ती, कपालिनी, दुर्गा, क्षमा, अम्मा, स्वाहा और स्वधा आदि । परन्तु हिन्दु मत से सम्बन्धित पुराणों अथवा देवी भागवत जिसमें 'मां' के सभी रुपों गुणों का विस्तार से वर्णन है, श्री तारा देवी का कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता । वैसे भी वेदों के उपरान्त पुराणों में ही नारी रुप से शक्ति उपासना का उल्लेख विशेष रुप से मिलता है ।

उत्पत्ति हेतु आधार की आवश्यकता होती है और बिना आधार उत्पत्ति सम्भव नहीं । नर की उत्पत्ति नारी है और इसी कारण जीव का आधार 'मां' है । परन्तु वैदिक साहित्य के प्रारम्भिक काल में आधार शक्ति का वर्णन नहीं मिलता । कारण दो ही हो सकते हैं । एक यह कि उस समय की चिन्तन धारा में आधार शक्ति का समावेश अज्ञानता के कारण न हो सका अथवा उस समय शक्ति और धारक, नर और नारी का समान अस्तित्व होने से किसी अराध्य की अर्द्धांगिनी के प्राक्ट्य की आवश्यकता ही न समझी गई हो । शक्ति की उपासना तब प्राकृत रूप में की जाती थी और अग्नि, वायु तथा सूर्य शक्ति के आधार थे परन्तु शक्ति को नारी रूप में नहीं माना गया । यही कारण है कि प्रारम्भिक वैदिक काल में देवी पूजा का विधान नहीं मिलता ।

देवी पूजा का प्रादुर्भाव पौराणिक युग में हुआ जब वेदों के उपरोक्त पुराणों को मान्यता प्राप्त हुई । चिन्तन धारा में तीन देवों ब्रह्मा, विष्णु और शिव के साथ क्रमश: तीन आधार शक्तियों

को जोड़ा गया। अर्थात सरस्वत लक्ष्मी और पार्वती। परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन तीनों देवों के साथ जब देवियों को जोड़ा गया तो नाम क्रम में देवियों के नाम बाद में जोड़े जाते हैं जबकि आगे चलकर रामायण और महाभारत काल में राम से पूर्व सीता और कृष्ण से पूर्व राधा का नाम लेने की व्यवस्था दी गई है। गहरा विचार करने पर हम एक निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अहं जनित ज्ञान से जब किसी वस्तु के न होने का आभास अथवा कभी लगने लगे तो अहं को आघात पहुंचता है उस आघात से बचने और अपनी झेंप मिटाने के लिए कुछ होने की भावना को उजागर करने हेतु 'स्व' को प्राथमिकता देकर अपने आपको सर्वोपरि सिद्ध करने के लिए रचा गया पुरुष प्रधान समाज का षडयन्त्र चल नहीं पाया और उसे किसी रूप में, शक्ति अथवा अर्द्धांगिनी रूप में नारी का विकल्प लेना ही पड़ा। यथा शक्ति के बिना शिव शव मात्र ही रह जाते हैं इसलिए शिव और शक्ति की उपासना एक साथ करके उन्हें अर्धनारीश्वर का रूप भी दिया गया है। कारण चाहे जो भी रहे हों तथापि शक्ति मूल है और उसके बिना शिव मात्र शव बनकर रह जाते हैं। जैसा कि पहले कहा गया है श्री तारादेवी का वर्णन बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। बौद्ध धर्म के प्रवर्तक शाक्य मुनि गौतम तो नारी को भिक्षु समाज में लेने को तैयार ही न थे अतः बौद्ध धर्म के प्रादुर्भाव काल में श्री तारा देवी का कहीं भी उल्लेख नहीं यद्यपि सदी के उतरार्ध काल में महायान शाखा में जब तंत्रयोग पद्धति का समावेश हुआ तो भिक्षु आसंग ने नारी शक्ति सिद्धान्त का बौद्ध धर्म में प्रतिपादन किया और इस प्रकार तन्त्रयुक्त महायान शाखा में भारतीय योग तंत्र विद्या के प्रभाव स्वरुप 'तारा देवी' का उल्लेख मिलता है। सातवीं शताब्दी तक पहुंचते-पहुंचते 'तारा देवी' के दो रुप अर्थात श्वेत-तारा और नील-तारा तिब्बत के तन्त्रयोग और महायान की बौद्ध शाखा में पाये जाने लगे। बौद्ध ग्रन्थों में नारी शक्ति के तीन रुपों का वर्णन आता है। सर्वप्रथम सौम्य देवी रूप जो कि बौद्धिसत्व के साथ जोड़ा जाता है दूसरे स्थान पर शक्ति रूपा और तीसरे स्थान पर डाकिनी रुप में। देवी रूप भी पुनः दो भागों में विभक्त किये गये हैं। शक्ति तथा उग्र रूप। इसी प्रकार शक्ति के भी दो रूप हैं क्रोधी और शान्त तथा जिस देव के साथ उस शक्ति विशेष का उल्लेख किया गया है उसी के समरूप क्रोधी अथवा शान्त रूप में शक्ति को दर्शाया गया है। डाकिनी का स्थान देवी और शक्ति के पश्चात् आता है और और उसे प्रायः स्तम्भन मुद्रा में दिखाया गया है।

तारा की उत्पत्ति के विषय में अनेकों लोक कथायें कही जाती हैं एक मत के अनुसार इनका जन्म भगवान अमिताभ के नेत्रों से निकलती नील किरण से हुआ। सरे मत के अनुसार "अवलोकितेश्वर भगवान के नेत्रों से अश्रुकण गिरने से एक तालाब बन गया और उसमें एक कमल पुष्प खिल उठा और पुष्प की कोमल पंखुड़ियों से तारा मां प्रादुर्भाव हुआ। लामाओं का मत यह है कि सभी उत्तम प्राकृतिक की नारियां तारा का अवतार हैं इसी कारण सातवीं शताब्दी के तिब्बती बौद्ध राजा की दोनों पत्नियों को तारा का अवतार

माना और उनमें से चिनी राजकुमारी को श्वेत तारा और नेपाली राजकुमारी को नील अथवा श्याम तारा कह कर पुकारा गया। इस प्रकार तारा के दो रूप श्वेत तारा और नील अथवा श्याम तारा की उत्पत्ति हुई। तारा की पूजा न केवल तिब्बत, भारत, नेपाल, जावाद्वीप और जापान तक ही सीमित रही तथापि ह्यून सांग लिखता है कि चीन में भी तारा की एक भव्य मूर्ति है परन्तु चीनी लोग 'तारा' की पूजा नहीं करते।

बौद्ध ग्रन्थों में तारा के अनेक रुपों का वर्णन उपलब्ध है। प्रारम्भिक काल में तो केवल तारा के ही दो मुख्य श्वेत तारा और और नील तारा का वर्णन आता है परन्तु पूर्वोत्तरी काल में तंत्र विद्या के प्रचलन और तंत्र पद्धति पर भारतीय प्रभाव और गुरू पद्मसम्भा का मुख्य प्रभाव दृष्टिगोचर होता है और मुद्राओं में परिवर्तन तथा तंत्र पद्धति के तदानुरूप ताराओं के २१ रूप हो गये। कहीं-कहीं १०८ नाम भी प्रचलित हैं, परन्तु मुख्य में श्वेत तारा अथवा सीता तारा, श्यामतारा, भृकुटीतारा, एकजाता, कुरूकुल रक्ततारा के नामों का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। श्यामतारा को तिब्बत लोग तारा का मूलरूप मानते हैं और उसे देवी दौनगोन कह कर पुकारते हैं। देवी कमलासन है और वर मुद्रा में दिखाई गई है। भृकुटीतारा के तीन मुख और छः भुजाएं कहीं गई हैं। इसके अतिरिक्त इन्हें खदरवाणी तारा और ब्रज तारा भी कहते हैं। कई ग्रन्थों में इस रुप को जांगुलीतारा कह कर भी पुकारा गया है।

एक जात तारा को सबसे अधिक शक्तिशाली माना गया है और महायान मत में लाहमू के साथ इनका उग्र रूप दर्शाया गया है। इनके तीन नेत्र और चौबीस भुजायें दिखाई गई हैं। सभी भुजाओं में विभिन्न आयुद्ध और शस्त्रों का प्रावधान है। कुरूकुल तारा को प्रेम की देवी माना जाता है और जब कोई स्त्री पास न हो तो इनके आह्वान की पद्धति और पूजा का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। इसके अतिरिक्त निम्न ताराओं के रूपों का वर्णन विभिन्न नामों से बौद्ध ग्रन्थों में पाया जाता है:—

क्रम	नाम	मुद्रा	आयुद्ध	जहां मंत्र उपलब्ध है
1.	कुण्डा और कुन्ती	ध्यान मुद्रा	कलश माला, पुस्तक, लाल और श्वेत रंग	बुद्ध माता
2.	वसुंधरा	अभय मुद्रा	कलश, अन्न	धन्न देवी
3.	प्रजनद्रमिता	धर्मचक्र मुद्रा	पुस्तक, माला पीत रंग	बुद्धिदायनी
4.	मारीची अथवा अशोक कान्ता और ब्रज ताराही	—	वज्र धारणी अशोक वृक्षशाखा	ॐ मरीची स्वाह
5.	प्रन्सवरी	—	———	तारा की सखी
6.	उषनिषविजया	वर मुद्रा	धर्म चक्र, श्वेत रंग	———
7.	सीता तप्ततारा	अभय मुद्रा	——	———

8. महामयूरी	वर मुद्रा	मयूर वाहिनी	———
9. न-रोमखा-स्योपदा-मां-	कपाल. लाल रंग	कपाल लाल रंग	डाकिणी
10. पंच रक्षा	———	——	———
11. पंच ध्यानी	———	——	———
12. सिंहवक्त्रा	———	——	———
13. ब्रज्र डाकिणी	———	——	———

हिमाचल प्रदेश में किन्नर, लाहौल और स्पिति क्षेत्रों में बौद्ध मत के अनुयायियों की बहुतायत है वहां पर तारा को अवलोकितेश्वरी, डोलमा तथा तारा कहकर पूजा जाता है। डोलमा को देवी रूप में मानते हैं और श्वेत तारा का अवतार मान कर दो भुजी मूर्ति अभय-मुद्रा में दिखाई गई है। आह्वान मंत्र : ॐ तारे—तू तारे—तूरे—स्वाहाः—।

नील तारा अथवा मानबो डुग - दू गबा की छः भुजा वाली मूर्ति और त्रिनेत्र धारणी का आह्वान मंत्र, ॐ सोहा हुम फट माना गया है।

गोन्कर—छ्ग—दुगवा अर्थात तारा देवी के एक अन्य रूप का आह्वान मंत्र 'ॐ शुभ मणि, मणि छुम, मणि हुम फट स्वाह'।

मानबो पिनानों—छग जिह्वा, जिल जिह्वा, एक अन्य चतुर्भुज तारा देवी का रूप है और इसका आह्वान मंत्र, गृहिणी पायह, गृहिणा पायह हुम फट स्वाह, हनहू वज्र विन्द्रजना हुम फट स्वाह।

इस प्रकार मूल रूप में श्री तारादेवी का प्रादुर्भाव, अभ्युत्थान और तंत्र विद्या में पूर्ण स्थान बौद्ध मत की महायान शाखा में ही पाया जाता है। हमारे ग्रंथों और पुराणों में इस रूप की व्याख्या कहीं नहीं मिलती। तथापि कपिऔ नारी रूप में तारा का वर्णन बाल्मिकी रामायण और उत्तर रामायण में मिलता है। तारा नाम के कपि का उल्लेख जिसे बाली का सचिव कहा गया है श्लोक १० सर्ग एक, बालकण्ड बाल्मिकी रामायण में मिलता है। वन पर्व के ९वें श्लोक में राम रावण युद्ध के समय राक्षस वध में भी तारा नामक कपि का वर्णन है। कम्ब रामायण के एक आख्यान के अनुसार समुद्र मन्थन के समय जब चौदह रत्न निकले तो 'तारा' भी उनमें से एक थी। बाल्मिकी रामायण के २२वें अध्याय में किशकिन्धा काण्ड में तारा को बाली की स्त्री माना है और किशकिन्धा में आज भी तारा का मन्दिर बना हुआ है।

स्कन्द भागवत की कथा के अनुसार तारा बृहस्पति की स्त्री थी और उसका सौन्दर्य अप्सराओं के समान था। एक समान वह चन्द्रमा के प्रेम-पाश में बन्ध कर गर्भवती हो गई और उसने एक सुन्दर बालक को जन्म दिया। बृहस्पति ने तारा को चन्द्रमा के प्रेम-पाश से छुड़ाने के लिए देवों की सहायता ली और पुत्र के पिता का नाम तारा ने चन्द्रमा कहा इस पुत्र का नाम बुद्ध था और वह पुरूरवाओं का पुरखा माना गया। इसके अतिरिक्त कहीं भी और कसी तारा का उल्लेख पुराणों में नहीं आता परन्तु इसमें भी कहीं उन्हें शक्ति रूप देवी के समान नहीं माना गया।

सन् १०१५ ई० के आस पास पूर्वी-भारत के साहित्य में इस प्रकार की देवी शक्ति का वृतान्त मिलाता है । और इन्हें चन्द्रदीप भगवती तारा के नाम से पुकारा गया है । पाल वंश के राजाओं के काल में बंगाल के चन्द्रदीप नामक स्थान पर बौद्धमत की शाखा से संबंधित 'तारा' देवी की उपासना का वृतान्त मिलता है । पाल राज्य के अन्य भाग जैसे बिहार प्रान्त में इनकी पूजा 'हिलसा' नाम से की जाती थी और तंत्र विधि से पूजा का मंत्र 'ॐ तारे तुतुतारे तुर स्वाह' प्रयोग किया जाता था । १६वीं और १७वीं शताब्दी के आस-पास चन्द्रदीप बंगाल प्रांत का एक छोटा सा राज्य था और बुकारगंज ज़िले में पड़ता था । इसके अन्तर्गत परगना बंगला अथवा 'बाकला' आते थे । बंगाल में काली को श्यामा कहकर भी पुकारते हैं और तारा के अनेक रूपों में से श्याम तारा सबसे उत्तम और पौराणिक मानी जाती है । इस प्रकार श्याम रूप में भारतीय तथा बौद्ध मत की आदि शक्ति के सामंजस्य का एक उदाहरण अवश्य हमारे सम्मुख आये हैं ।

भारतवर्ष में श्री तारादेवी की मान्यता और पूजा वर्तमान ज़िला शिमला हिमाचल प्रदेश में की जाती है । श्री तारादेवी का भव्य मन्दिर शिमला से दक्षिण पश्चिम में स्थित 'तारबा' पर्वत पर है और वहां पर अठारह भुजाओं वाली, सिंह वाहिनी भगवती तारा की भव्य मूर्ति विद्यमान है । माता की मान्यता और करुणामयी गाथा के फलस्वरूप इनके दर्शनार्थ श्रद्धालु दूर-दूर से आते हैं और आश्विन (असौज) मास में दशहरे के दिनों में यहां भगवती का मेला लगता । पहले इस मेले में बकरों और भैंसों की बलि चढ़ाई जाती थी परन्तु अब भैंसे की बलि नहीं देते भगवती को महीष-मर्दिनी के नाम से भी जाना जाता है और मूर्ति के साथ महिषासुर का कटा हुआ सिर रखा था जो सन् १९७० में जब देवी की मूर्ति को चुराने का प्रयत्न किया गया उस समय वह महिषासुर का सिर उठा ले गये परन्तु मूर्ति को एक वियावान जगह पर छोड़ गये । इस सम्बन्ध मेरा अपना अनुभव है जो लेख के अन्त में दिया गया है, तथापि यहां पर भगवती की उत्पत्ति और उनकी स्थापना के सम्बन्ध में जो उल्लेख पुस्तकों तथा लोक कथाओं से उपलब्ध है उनका वर्णन सर्व प्रथम करना अनिवार्य है ।

इस पर्वतीय जनपद में एक सर्वमान्य लोक गाथा है कि श्री तारादेवी रियासत क्योंथल के राजपरिवार की पारिवारिक देवी हैं और जब यह परिवार यहां आया तब से ही यहां पर देवी की स्थापना की गई है । शिमला हिल्ज गजेटियर में रियासत क्योंथल का उल्लेख है और उसमें लिखा है कि क्योंथल के राजा 'सैन' वंश से सम्बंधित है और इनका मूल बंगाल प्रान्त से माना जाया है । शहाबुदीन गौरी के समय इनके पूर्वज कस्वा 'गौड' बंगाल के प्रान्त से भाग कर आये और इलाहाबाद में आकर बसे । वहां से रूपसैन, रोपड़ आये और वहां पर भी मुगलों से लोहा लेते रहे । उनकी मृत्यु के पश्चात इनके तीन पुत्र वहां से पहाड़ों की ओर भाग गये । गिरिसैन अथवा तमसैन ने जुण्गा में रियासत क्योंथल को बसाया, वीरसैन सुकेत गये और हमीरसैन किश्तबाड़ में जाकर बसे । इस प्रकार जब राजा गिरिसैन ने यहां पर अपना राज्य स्थापित कर लिया तो कुछ वर्षों

के उपरान्त उनके राज्य में नाथ समुदाय के सिद्ध योगी जिनका नाम 'तारानाथ' कहा जाता है आये और उन्होने एक पर्वत पर अपना धूना और आसन जमाया । वर्षाऋतु में भी वह उस सुनसान जंगल में रहते परन्तु उनके आसन और धूने पर वर्षा का प्रभाव नहीं हुआ । तब राजा को उनकी अलौकिक सिद्धियों के बारे में सूचना मिली तो वह भी उनके दर्शनार्थ पर्वत पर गये । सिद्ध योगी तारानाथ ने राजा से कहा कि वह पर्वत तारबा पर देवी का मन्दिर बनायें । उनकी ईष्ट देवी श्री तारादेवी थी और इस प्रकार उस पर्वत पर देवी का मन्दिर बनाया गया और देवी की मूर्ति की स्थापना योगी तारानाथ ने शस्त्र-विधि से सम्पन्न की तथा तारादेवी को भवतारणी और सब दुःखों से छुटकारा दिलाने वाली करूणामयी मां कहा । श्री तारादेवी की मान्यता पूरी रियासत में की जाती थी और विशेष कर चेचक और महामारी से छुटकारा दिलाने के लिए सभी लोग देवी मां की शरण में जाते हैं । जब कभी श्री तारादेवी कुपित होती है तो बाघ लोगों के मवेशियों को खाते हैं, ऐसी एक सर्व मान्यता है । श्री तारादेवी के मन्दिर के साथ ही एक शिवालय भी योगी तारानाथ ने बनवाया और मूल मन्दिर सर्वप्रथम, देवी का गांव जुग्गर, परगना खुशाला में बनाया गया था और आज भी वहां इनकी प्रथम पूजा सम्पन्न की जाती है ।

एक और लोक गाथा के अनुसार राजा बलबीर सैन ने एक लोहार से देवी की मूर्ति बनवाई और लोहार ने मिट्टी की मूर्ति बनाकर दी । पण्डितों ने स्थापना से पूर्व राजा से कहा कि पांच बलि का प्रावधान किया जाए परन्तु राजा ने ऐसा करने से इन्कार किया और एक दिन डाकुओं ने लोहार को लूट लिया और लोहार तथा उसके दो साथियों को मार दिया । साथ ही एक कुत्ता और एक बिल्ली भी मारे गये । इस प्रकार पण्डितों ने वाणी की कि देवी को पंच-बलि दी जाये सत्य सिद्ध हुई ।

एक और लोक कथा जिनका वर्णन क्योंथल स्टेट राज पंड़ित श्री कृपाराम शास्त्री ने अपनी लघु पुस्तिका श्री तारादेवी स्थान माहात्म्य में किया है के अनुसार एक बार रियासत क्योंथल के प्रतापी राजा भीमसैन जंगल में शिकार कर रहे थे तो उन्हें वाहिनी मां भगवती के दर्शन हुए और उन्हें तारबा पहाड़ पर एक मंदिर बनाया और उसमें अठारह भुजाओं वाली सिंह वाहिनी मां की मूर्ति की स्थापना कराई । मूर्ति स्थापना करते समय योगी तारानाथ भी उपस्थित थे ।

एक और गाथा के अनुसार राजा को देवी ने स्वप्न में दर्शन दिये और कहा कि तेरे महल जहां तक चिंटियों की कतार लगी मिले उस पर चलते जाना और जहां पर कतार पूरी हो जाये वहां मेरा मन्दिर बनाना । मैं तेरी प्रजा की सदैव रक्षा करूंगी । प्रातः उठ कर राजा ने देखा कि उसके महल के द्वार पर से चिंटियों ने कतार बांध रखी है और वह उस कतार के साथ-साथ चलता गया और तारबा पर्वत पर जा पहुंचा और वहां उन्होंने माता का मन्दिर बनाया ।

इन लोक गाथाओं और उपलब्ध सामग्री में योगी तारानाथ द्वारा प्रेरित आख्यान ज्यादा युक्तिसंगत लगता है । कारण स्पष्ट है कि तारानाथ भी शक्ति के उपासक थे और उन्होंने दो

भुजाओं वाली श्वेत तारा की मूल मूर्ति की स्थापना कराई थी । सैन वंशी क्योंथल रियासत के राजा बंगाल प्रान्त से आये और वहां पर चन्द्रदीप में तारा की पूजा का वृतांत मिलता है। अतः सम्भवतः योगी तारानाथ भी इसी शाखा के तांत्रिक रहे हों और राजा की कुलजा होने के नाते उन्होंने मां तारा की स्थापना तारबा पहाड़ पर कराई। लोक गाथाओं, जन-श्रुतियों और "पुराणों में भले ही हम भगवती तारा को बौद्धों की ई॰ट देवी मानते हैं परन्तु वास्तव में जैसा मां का नाम है 'तारा' अर्थात तारने वाली और सभी दुःखों का मिवारण करने वाली है। उसके अनेक रूप हैं और यदि कहें कि सभी रूपों में उसकी ही प्रतिछाया है तो अतिश्योक्ति न होगी। कुछ भी हो श्री तारा-माई वास्तव में ही भवतारणी और सब कष्टों का निवारण करने वाली है। इस संबन्ध में मेरी निजी अनुभूति है और वास्तव में यह एक चमत्तकार ही था जिसका अनुभव और वर्णन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ।

घटना आज से 17 वर्ष पूर्व अर्थात अगस्त 1970 की है। 8 अगस्त की संध्या के लगभग 5 बजे जब मैं और मेरी पत्नी स्नोडन अस्पताल गए। वह उस समय गर्भवती थी और गर्भ में छः मास का जीव पल रहा था, तथापि संयोगवश गर्भ अपने निश्चित स्थान से विचलित हो गया था और उन्हें असाह्य पीड़ा हो रही थी। हल्का रक्तस्राव भी हुआ। पड़ताल के उपरान्त डाक्टरों ने राय दी कि गर्भ गिराना पड़ेगा अतः दूसरे दिन 9-8-1970 को पुनः अस्पताल जाने को कहा। जब हम लौट कर घर आये तो हमारी चिन्ता का पारावार न था तथापि चिन्ता ग्रस्थ हम सोच रहे थे कि अब क्या किया जाए। भगवत प्रेरणा से लगभग आधी रात को मेरी पत्नी ने कहा कि कल अस्पताल जाने से पूर्व हम मां तारा के दर्शन करने पहाड़ पर जाएंगे। मुझे उनकी बात से आश्चर्य हुआ कि इस अवस्था में लगभग 6 कि० मी० की सीधी चढ़ाई किस प्रकार पार कर सकेंगी यह, परन्तु उनका निश्चय दृढ़ था और प्रातः पहली बस से हम तारादेवी स्टेशन पर पहुंचे। वहां पहुंच कर मैंने कहा कि यहीं से प्रणाम कर लो इस विकट चढ़ाई जो पार करना सम्भव नहीं जबकि स्थिति पूर्ववत बनी थी। परन्तु यह बिल्कुल नहीं मानी और हम केवल दो प्राणी मां का नाम लेकर धीरे-धीरे चढ़ाई चढ़ने लगे। एक हाथ से छूटते गर्भ को थाम रखा था और दूसरा हाथ उन्होंने मेरे कन्धे पर सहारे के लिए रखा था।

जब लगभग 2 कि. मी. को चढ़ाई पार कर गये तो वहां पर थोड़ा सीधा रास्ता मिला और वहां भेड़ों का सरकारी फार्म भी हैं। न जाने क्या चमत्कार हुआ कि उनके पेट से खट की आवाज आई और गर्भ पुनः अपने स्थान पर आ गया और उनकी सारी पीड़ा क्षण भर में ही समाप्त हो गयी। हमने मन ही मन मां का धन्यवाद किया और उन्हें प्रणाम कर विश्राम करने बैठ गए। विश्राम के पश्चात पुनः यात्रा शुरु की और आनन्द पूर्वक चलने लगे। मन्दिर से लगभग 2 कि०मी० पहले रास्ता बहुत भयानक ढांक से होकर जाता है और वहां केवल एक आदमी

ही के चलने लायक स्थान है। उस विकट मार्ग में हमें एक चितकबरा सांप मिला जो कि अजगर के समान था। उसे देखकर हमारे तो प्राण सूख गये कि इस दैत्याकार सर्प से कैसे बच पाएंगे। परन्तु उसने भी दर्शनार्थ अपना सिर उठाया और तुरन्त नीचे की ओर झाड़ियों में लोप हो गया। इस घटना को देखकर हम और भी विस्मित थे कि इस ऊंचाई पर यह अजगर नुमा प्राणी कहां से और कैसे आया और फिर चुपचाप हमारे मार्ग से हट गया।

जब हम मां के मन्दिर में पहुंचे तो हमारे आश्चर्य की सीमा न रही। वहां का दृश्य देखकर हम अचम्भित थे, मन्दिर में मूर्ति नहीं थी। मां का आसन छिन्न-भिन्न था और वहां केवल एक छोटी सी संगमरमर की दो भुजा वाली मूर्ति एक ओर रखी थी। कमरे में शराब की दो-तीन बोतलें खाली पड़ी थी। जो वहां की सारी पवित्रा पूर्णतया भंग की हुई थी। पुजारी की कुटिया जो साथ है, हमने वहां जाकर पुजारी से इस स्थिति का कारण जानना चाहा तो वह बोले मां की मूर्ति को तो पिछली रात चोर उठा कर ले गये हैं। ऊपर केवल मूल संगमरमर की मूर्ति बची है जिसे बाबा तारानाथ अपने साथ लाये थे। वह मूर्ति अठारह भुजा वाली मूर्ति के नीचे जमीन में छुपा कर रखी थी इस कारण उसे नहीं उठाया। हम हताश निराश, फिर हमने रास्ते में सांप मिलने की घटना का वर्णन किया और जानना चाहा कि ऊंचाई पर क्या इससे पूर्व कभी उन्होंने ऐसा जीव देखा था। हमारी बात सुनकर पुजारी बड़ा प्रभावित हुआ और प्रसन्न मुद्रा में हमें बैठने के लिए उसने स्थान दिया और रोमांचित होकर बोला बाबू साहब आपने तो मां के दर्शन कर लिए हैं आप बड़े भाग्यवान हैं। उन्हें हमने गर्भ वाली बात भी कही और उसने आस्था और श्रद्धा से व्यक्त किया कि यह सब मां का ही प्रताप है। उसके उपरान्त उसने हमें मूर्ति चोरी और उससे सम्बन्धित प्राप्ति की घटना का जो चित्रण दिया इससे भी अधिक चमत्कारिक और रोमांचकारी है।

पुजारी जी के अनुसार 7 अगस्त, 1970 की अर्धरात्रि को कुछ लोगों ने आकर उनकी कुटिया को बाहर से कुण्डा लगा दिया और मन्दिर में जाकर मूर्ति उखाड़ कर ले गए। शराब की खाली बोतलें और सिग्रेट के टोटे भी उन्होंने वहां डाले। पुजारी को रात्रि में तो आभास नहीं हुआ पर प्रातः जब कमरा खोलना चाहा तो वह बाहर से बन्द होने के कारण खोल न सका। रोशनदान नुमा खिड़की इतनी छोटी थी कि उससे बाहर निकलना सम्भव नहीं हुआ और आस-पास कोई आबादी थी नहीं जो उसकी आवाज़ सुनते। पुजारी हताश होकर बैठ गया, थोड़ी देर के पश्चात गांव के लोग और उसकी अपनी लड़की कुटिया के बाहर आये लड़की को माता की खेल आई और वह जोर-जोर से कह रही थी कि "मैं झाड़ी के नीचे भीग रही हूं, मुझे वापस ले आओ..."। उन्होंने आकर दरबाजा खोला और मन्दिर के हालात देखे तो वास्तविक स्थिति का आभास हुआ। वह लड़की घर पर अर्धरात्रि से ही छटपटा रही थी और मन्दिर जाने की जिद्द कर रही थी। फिर जिधर लड़की गई सारे लोग उसके पीछे-पीछे हो लिए और उस संकरे मार्ग के पास ही झाड़ियों में 'मां' की मूर्ति मिल गई। मूर्ति के चारों ओर वही चितकबरा अजगर सांप लिपटा हुआ था जिसे आप लोग आज देखकर आये हैं। जब लोग मूर्ति के पास पहुंचे तो वहां से वह

सांप हट गया और मूर्ति को लोगों ने एक गोरखा मजदूर के कंधों पर रख दिया और मन्दिर की ओर लौट चले। मूर्ति के साथ का सारा सामान मिल गया परन्तु भैंसे का कटा हुआ सिर जो कि अष्टधातु का था उसे चोर ले जाने में सफल हो गए। मूर्ति का कुल वजन लगभग 8 10 कि० ग्रा० है तथापि गोरखा मजदूर कुछ ही कदम दे पाया और हार कर बैठ गया। उसने आगे चलने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। फिर पुजारी ने स्वयं मूर्ति अपने कंधों पर रखी और निःसंकोच अपनी कुटिया तक ले गया। सारी कहानी सुनाने के बाद पुजारी ने प्रसन्न होकर कुटिया का द्वार खोला और अठारह भुजाओं वाली सिंह-वाहनी मां तारा देवी के दर्शन करके हम कृतार्थ हुए। आशीर्वाद स्वरूप 8 जनवरी, 1971 को हमें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। तो वास्तव में मां तारा है ही तारने वाली और कष्टों का निवारण करने वाली है। यह दूसरी बात है कि मतभेदों के आधार पर हम उन्हें बौद्ध की देवी कहें या क्योंथल वासियों की कुलजा। आदि शक्ति-मां का ही स्वरूप है और इस के विभिन्न नाम, गुण, रूप उनकी स्वेच्छा स्वरूप मात्र कल्याण हेतु धारण किये हुए लीलामय रूप है।

सचिव,
हिमाचल प्रदेश विधान सभा, शिमला-४

तत्तापानी क्षेत्र में गौओं का प्रसिद्ध त्योहार-माल्

दुनी चन्द्र शर्मा

हजारों वर्ष पहले की बात है कि हिमाचल प्रदेश के तत्तापानी नामक क्षेत्र में रुद्राक्षित राजा राज्य करते थे। यहां की प्रजा इस राजा के राज्य में कुच्छेक बातों के सम्बन्ध में दुःखी थी। इसी काल में तत्तापानी के विशेष स्थान सतलुज नदी के किनारे महर्षि यमदग्नि का आश्रम स्थित था और उनके आश्रम में उनके हजारों शिष्य एवं श्रद्धालु भी रहा करते थे। महर्षि की विकट तपस्या से प्रसन्न होकर महाराजा इन्द्र ने इन्हें एक महान् शक्ति दायनी कामधेनु गौ भेंट के रूप में प्रदान की थी, जो उक्त आश्रम में ही रहती थी। एक दिन एक विचित्र घटना घटी। प्रजा जो कि रुद्राक्षित राजा के मन-घड़ंत एवं उल्टे-सीधे आदेशों उनकी मनचाही इच्छाओं की प्रतिपूर्ति के कारण अत्यन्त तंग आ चुकी थी ने महर्षि यमदग्नि से प्रार्थना की कि महाराज हम इस राजा के दिन प्रति-दिन के नये आदेशों से तंग आ चुके हैं। अतः आप इसका कोई उपाय सोचिये, जिससे हमें कोई राहत मिल सके और इस राजा के अन्धे कानून पर रोक लग सके। महर्षि ने प्रजा की अनुनय विनय बड़ी श्रद्धा एवं सेवा भाव से सुनी और आश्वासन दिया कि वे इस संन्दर्भ में कोई न कोई युक्ति सोचेंगे। प्रजा के इस आशय को ध्यान में रखते हुए महर्षि जी ने एक दिन महान् यज्ञ करने की घोषणा की और उस यज्ञ में अन्तिम आहूति वाले दिन राजा रुद्राक्षित अपने मन्त्रीगण एवं कुछ सैनिकों सहित पधारे। जब वे महर्षि के आश्रम के भीतर प्रविष्ट हुए तो उन्होंने देखा कि लोगों को नाना प्रकार के स्वादिष्ट एवं कीमती भोजन परोसे जा रहें हैं और यज्ञ में सम्मिलित हुए लोग प्रसन्नचित्त से भोजन खा रहे थे। राजा इस बात को देखकर चकित रह गया कि इस फक्कड़ ऋषि के पास इस प्रकार के कीमती भोजन की सामग्री कहां से आई। जब राजा ने इस का कारण पूछा तो यमदग्नि ऋषि ने इन्हें बताया कि महाराज ईश्वर कृपा से मेरे पास शक्ति-दायनी एवं संजीवनी पावन पवित्र कामधेनु गौ-माता विद्यमान है, जिसकी अपार कृपा से मैं इस अखंड महान यज्ञ में पूर्णाहूति करने में सक्षम हो सका हूं। राजा ने यह जब भेद पाया तो कहा कि अरे ऋषि ऐसी वस्तु का तेरे आश्रम में क्या काम है। यह तो मेरे जैसे राजा या महाराजा इन्द्रराज सी ठाठ वाले महलों में ही शोभाएमान हो सकती है। अतः इस काम धेनु को आप मुझे सौंप दें। यह मेरा आदेश है। महर्षि ने ऐसे मन चाहे आदेश मानने से इन्कार कर दिया परन्तु राजा रुद्राक्षित अपनी मनमानी इच्छा की पूर्ति के लिए प्रसिद्ध थे,

इसलिए उन्होंने महर्षि के साथ इतनी कठोरता बर्ती कि दोनों में युद्ध होने लगा राजा के साथ कुछ सैनिक तो थे ही, अतः यमदग्नि ऋषि को उन्होंने मार डाला।

उधर उस समय महामान्य परशु राम जी, 'मणिकरण' नामक स्थान पर पार्वती नदी के किनारे तपस्या में लीन थे और जिस समय महर्षि यमदग्नि परशुराम जी के पिता का वध किया गया तो उस समय परशुराम जी मणिकरण के गर्म जल स्रोत में धोती सहित स्नान कर रहे थे और स्नान कर ही चुके थे कि उन्हें योग साधना द्वारा अपने परम पिता महर्षि यमदग्नि की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ और वे उस गीली धोती के समेत ही योग साधन द्वारा तत्तापानी क्षेत्र में पहुंचे और राजा रूद्राक्षित के साथ गीली धोती पहने युद्ध करने लगे। युद्ध के दौरान उस गीली धोती से जो गर्म पानी के छींटे तत्तापानी में सतलुज नदी के आर-पार गिरे उससे यहां पर गर्म पानी के चश्मों की उत्पत्ति हुई और इस स्थान का नाम परशुराम जी की इस महानता से 'तत्तापानी' पड़ा। यहां पर उनके तेज का परिलक्षण इस बात से भी परिपुष्ट होता है कि यहां पर आज भी उनके तेज से समाविष्ट गर्म पानी विद्यमान है जिसको हाथ से छूना भी कठिन है और यदि कोई साहस कर भी ले तो हाथ जले बिना नहीं रह सकता। परशुराम जी ने अपने पिता के वध का राजा रूद्राक्षित से बदला तो ले लिया किन्तु दूसरी ओर शक्तिशाली एवं संजीवनी पावन पवित्र कामधेनु माता पहले ही उड़ करके आकाशपुरी में राजा इन्द्र के महल में पहुंच चुकी थी। प्रजा इस घटना से अत्यन्त दुःखी हुई और उस काल से आज तक कामधेनु माता की पावन पवित्र याद में आज भी गौ माता के इस पवित्र त्यौहार को बड़ी धूम-धाम से 'माल' के रूप में मनाते चले आ रहे हैं। माल का यह त्यौहार न केवल विशेष क्षेत्र तत्तापानी में ही मनाया जाता है, बल्कि यह ज़िला मण्डी के सभी ग्रामों तथा यहां से होता हुआ ज़िला कुल्लू के लगभग प्रायः सभी ग्रामों में पहुंचा और मनाया जाता है। वैसे तो इसके मनाने की विधि सभी स्थानों में एक सी है किन्तु कहीं-कहीं इसे तत्तापानी के गांवों से कुछ भिन्न ढंगों में भी मनाया जाता है। इस त्यौहार का विशिष्ट वर्णन केवल तत्ता-पानी क्षेत्र के आस-पास के गांवों का ही यहां व्यक्त किया जा रहा है।

तत्तापानी क्षेत्र में 'माल' का यह पवित्र त्यौहार बड़ी उत्सुकता से निहारा जाता है। यह त्यौहार कार्तिक मास की पूर्णिमा रात्रि से लेकर के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा के पर्व के साथ ही समाप्त होता है। इस त्यौहार का प्रारम्भ नवरात्रों की समाप्ति दुर्गाष्टमी के दिन से माना जाता है। इस दिन सुबह लोगों के मन में इस त्यौहार को मनाने की एक लहर सी दौड़ जाती है। दुर्गाष्टमी के दिन सुबह ही गौ-शालाओं को अच्छी तरह से साफ किया जाता है और गौओं एवं बैलों के बांधने के स्थानों को मोटे झाड़ू के साथ पूरी तरह से साफ किया जाता है। उसके पश्चात् गौओं, बैलों एवं बच्छी-बछड़ों के सीगों को तथा खुरों को अच्छी तरह से पानी के साथ धोया जाता है और साथ ही उनके शरीर को गीले कपड़े के साथ पोंछा जाता है। उसके बाद उनके सींगों में

शुद्ध घी की मालिश की जाती है और उसके पश्चात् एक थाली में पूजा का सामान अर्थात् धूप बती, कुंगू, मौली, अक्षत, नैवेद्य तथा फूल आदि सजाए जाते हैं और घर की सबसे बड़ी सुहागिन स्त्री फिर इन गौओं की पूजा करती है। पूजा करने के पश्चात गौओं को स्वच्छ भोजन अर्थात् मक्की, कणक आदि का पीसकर के पकाया हुआ भोजन खिलाया जाता है। और उसके पश्चात इन गौओं को एक "ग्वालू" के पास चरागाहों में छोड़ दिया जाता है। जब गौओं को गौशाला से बाहर छोड़ने लगते हैं तो उस दिन प्रथम बार इस प्रकार का क्षेत्रीय बोली में एक सुन्दर गीत जिसे "मालड़ी" कहते हैं, गाया जाता है जो कि निम्न प्रकार से है :—

"माला-धौंणे मालाड़िए माले (२ बार)
कुए मालू केथा देशे आएगैं (२ बार)
कुल्लू जे इन्द्रा देशे आएगैं,
सौड़ी सकेता देशे आएगैं।
होरो माले कनी लोवे आएगैं (२ बार)
तेथ्यो माले गाइयालो लोवे आएगैं (२ बार)
गाईकै क्या लोए आएगैं (२ बार)
बाच्छरू-बच्छेरू लोए आएगैं
गावरू गवेरू लोए आएगैं।
गावरू गै क्या लोए आएगैं,
बाच्छरू गै क्या लोए आएगैं
बारा-पांजा थैरा लोए आएगैं,
घोड़ा मूड़ी सोलू लोए आएगैं।
होरों मालै क्या लोए आएगैं (२ बार)
बारा-पांजा खेला लोए आएगैं,
कूंआंरे बनैंले लोए आएगैं।
होरो मालै क्या लोए आएगैं (२ बार)
दाला कनाले लोए आएगैं,
पिंदली री बारा लोए आए।
होरो मालै क्या लोए आएगैं (२ बार)
भाते भरी थाले लोए आएगैं,
ते घीवे भरी घीहड़े लोए आएगैं।
होरों मालै क्या लोए आएगैं (२ बार)
कुंगू कंगोरे लोए आएगैं,
जला भरे लोटा लोए आएगैं।

उजै बडेरडिए बऊए,
घरै म्हारे लछमे आए।
बऊए त तीरी मांजिए धीटिए,
धूप-धनैरा लोए आणे बेठिए।
धूप-धापे ओवरे लाइए,
तू जिऊ गाईये लाखा वरिषा॥

इस प्रकार दुर्गाष्टमी के दिन की शाम को माल् को मनाने का प्रारम्भिक कार्यक्रम शुरु हो जाता है। इस दिन शाम को लोग अच्छे-अच्छे भोजन बनाते हैं और बड़ीउ त्सुक्ता से शाम को माल गाते है। माल का अर्थ यहां पशुधन तथा यह लगाया जाता है कि इस त्यौहार को माला की लड़ी के रूप में मनाया जाता है और इस त्यौहार की पांच से सात के बीच में मालाएं क्षेत्रिय बोली में गाई जाती हैं। इस दिन शाम को लोग अपने-अपने सभी पशुओं के नाम गौ शाला के बाहर बैठकर गांव की सभी स्त्रियां और बच्चे एकत्र होकर जोड़ी के रूप में गाती हैं। और जब तक गांव के सभी पशुओं के नाम नहीं पुकारे जाते तब तक इस क्रम को जारी रखा जाता है। तदन्तर "मालड़ी" यानी माल का गयन जो ऊपर वर्णित किया गया है गाया जाता है। उदाहरण के तौर पर पशुओं के नाम इस प्रकार गाकर बोले जाते हैं जैसे-"मालओ मैंदिए, इए मालओं तथा इसी प्रकार बैलों के नाम यथा –"मालओ लोविया इए मालओं"

जब यह उपरोक्त कार्यक्रम समाप्त हो जाता है तो उसके पश्चात क्षेत्रीय बोली में राजा जनक की पुत्री सीता माता एवं भगवान रामचन्द्र जी की लोक गाथा का वर्णन भी गाकर किया जाता है और इसमें गांव के सभी स्त्री-पुरुष बड़ी दिलचस्पी से भाग लेते हैं और "सिया-राम की कथा का वर्णन निम्न प्रकार से अपनी बोली में गाकर किया जाता है : –

"ओ उजिए-ओ उजिए सिया देइये रानियें
ताएं पर देखू पाणियां भरदे।
ओ एड़ा भी तेड़ा ओ पाणे बिना भरदे,
ओ जेड़ा भरी भाइया तेरा"

इसी प्रकार यह 'सिया राम' की लोक-गाथा के गायन का कार्यक्रम आधी रात तक जारी रहता है और इसमें स्त्रियां पुरुष इकट्ठे गाते व नाचते हैं। इसी प्रकार का कार्यक्रम पांच से सात दिनों तक जारी रहता है और फिर सातवें दिन इस माल त्यौहार को अन्तिम रूप में मनाने की योजना बनाई जाती है। इस दिन शाम को बड़ा ही हर्षोल्लास का वातावरण होता है और इस दिन के इस अवसर को 'खुड़माल' कहते हैं। इसी दिन ज्योतिष शास्त्र के अनुसार माल पूर्णिमा का पर्व प्रारम्भ होता है। इस पूर्णिमा के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए माल का पावन पवित्र त्यौहार बड़े उत्साह और रीति-रिवाज के साथ रात को मनाते हुए दूसरे दिन की सुबह

लगभग चार बजे गौओं, बैलों, बछड़ों और बछड़ियों को हरे' पीले और सफेद रंगों से रंगा जाता है और उनके सींगों को भी शुद्ध घी की मालिश की जाती है। सभी पशुओं के माथे पर कुंगू का टीका यानी बिन्दी लगाई जाती है ताकि उनका माथा सुन्दर दिखाई पड़े। इसके साथ ही जंगल से बहुत से फूल इकट्ठे किये जाते हैं और कुछ फूल छोटे-छोटे फूलों के बगीचे से, फुलबाड़ियों से एकत्रित करके प्रत्येक पशु के गले के लिए और बैलों के लिए लम्बी-लम्बी मालाएं एवं हार गूंथे जाते हैं। पशुओं के शरीर रंगने के बाद में फूलों के हार एवं मालाएं गौओं और बच्छड़े-बच्छड़ियों के गले में बांधे जाते हैं और बैलों के पूरे शरीर पर मालाएं लपेटी जाती हैं, जिससे यह पशु बहुत ही सुन्दर, चुस्त एवं प्रसन्नचित दिखाई देने लगते हैं और फिर बहुत सी गाएं तो बोलने यानि रंभाने लग जाती हैं! यह सारा कार्यक्रम घर की औरतें और बच्चे करते हैं और इस प्रकार के काम को करते हुए औरतें मिलकर बड़े ही मीठे स्वर में 'खड़ू माल' गाती हैं। इस समय जो बोल गाए जाते हैं वे इस प्रकार हैं।

'आज होए माल ओ बगिए होए,
माल ओ गाइए'
'आज होए माल ओ लोविया,
होए माल ओ मेरिया'
'कइये-कइये कलिये,
कइये-कइये फूले'
मुं लाणे हार इनादे,
झट-पट गूंथे इन्दें'—आदि-आदि

इसके पश्चात् सुबह के लगभग पांच बजे रात खुलते ही सभी पशुओं को गौशाला से बाहर छोड़ा जाता है। और उनके पीछे क्षेत्रीय बोली में यह गीत गाया जाता है :—

"छाडे ओ ग्वालटुआ गूंडा,
गाए मेरे मतलोगे चालिए" आदि-आदि

फिर दो-तीन बच्चे मिलकर उन पशुओं को सजे सजाए रूप में खाली खेतों में ले जाते हैं और साथ में आनन्द विभोर होते हुए इस प्रकार कहते हैं– "माल-माल ओ माल-माल ओ।" फिर खूब नाच-गाने भी करते हैं और कई स्थानों यथा-कठेड़-जमो गांव में तो ये गौएं व बैल ढोल-नगाड़े व करनाल के वादन के साथ मतलोग यानी जंगल की तरफ चरागाह में छोड़े जाते हैं फिर औरतें घर को वापिस हो जाती हैं और गौओं के लिए बड़ा ही पवित्र एवं स्वादिष्ट भोजन पकाया जाता है। इसी के साथ उस दिन लोग अच्छे-अच्छे भोजन भी पकाते हैं और आन्नद से खाते है। पशुओं के लिए बिहूल वृक्ष की हरी-हरी पत्तियां व हरी-हरी घास इकट्ठी की जाती है और

घर में रख ली जाती है। इसके बाद लगभग ११ बजे इन सभी पशुओं को इकट्ठा करके घर पर लाने की तैयारी की जाती है और फिर सामूहिक रूप से पूजन की सामग्री तैयार करके गौओं का महान् एवं पवित्र पूजन किया जाता है। सभी पशुओं को दाल भात घी पहले पूजते समय थोड़ा-थोड़ा खिलाया जाता है और इस तरह से यह गौ पूजन का समारोह पूर्ण होता है। पूजन करते समय औरतें अपनी भाषा में गौ पूजन के गीत गाती हैं जिसके बोल इस प्रकार हैं :—

"आगड़े तो आए मेरे चालटे,
दू दैं देओ भरी वाल्टे"
"आगड़ा तो आया मेरा माले,
सर्गापुरी झीढ़ा आया ढाले।"

इसके बाद अब गौओं बैलों तथा बछड़े और बछड़ियों को बहुत सा पकाया हुआ भोजन खिलाया जाता है, उसके बाद सभी पशुओं को गौ-शाला में बांधा जाता है और उन्हें विहूल की पत्तियां खाने को डाल दी जाती हैं। फिर हरी-हरी घास भी डाल दी जाती है।

वैसे माल त्यौहार को मनाने के विषय में भिन्न-भिन्न दन्त कथाएं हैं परन्तु माल-त्यौहार का सम्बन्ध विशेषतया तो पावन पवित्र पर्वों से जुड़ा हुआ है यथा सर्व संजीवनी काम धेनु के ऋषियों द्वारा पूजन अर्चन से तथा माल पूर्णिमा के दूसरे दिन पड़ने वाली "गोवर्धन पूजा" से है। गोवर्धन पूजा का महत्व भारत वर्ष के उत्तरी राज्यों में अधिक आंका जाता है और इसे बड़ी ही धूम धाम से मनाया जाता है। यहां पर गोवर्धन पूजा के विषय में केवल इतना ही व्यक्त किया जाता है कि माल त्यौहार का सम्बंध गोवर्धन पूजा से संयुक्त है और इसी विशेष पर्व के कारण माल त्यौहार भी अपना हिन्दू समाज में एक विशिष्ट महत्व रखता है। यह तो सर्व विदित है कि गोवर्धन पूजा के दिन श्री कृष्ण महाराज ने अपनी एक अंगुली के ऊपर गोवर्धन पर्वत को उठाया था और गोकुल में लाखों ग्वालों एवं गौओं की रक्षा की थी। इस विशेष घटना से सम्बध रखते हुए माल त्यौहार हिमाचल प्रदेश में विशेष कर जिला मण्डी तथा कुल्लू के दूर दराज स्थानों में भी मनाया जाता है। इसी दिन दोपहर को ढोल-नगाड़े व शहनाई के साथ गौओं का पूजन किया जाता है और इस विधि से माल का त्योहार सम्पन्न होता है।

भारत वर्ष को त्यौहारों, मेलों एवं पर्वों का देश कहा गया है। इसके उत्तरी राज्यों में मेलों व त्यौहारों की झड़ी सी लगी रहती है। अतः हिमाचल प्रदेश एक देव भूमि होने के नाते यहां पर तो हर मौसम में मेलों व त्यौहारों की बहार सी लगी रहती है जिसमें माल त्यौहार भी अद्वितीय तथा महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

प्रवर सहायक
वन विभाग, हि० प्र० सचिवालय
शिमला-१७१००२

भगवती मिंधल देवी : एक कथा यात्रा

□ प्रो० नरेन्द्र अरुण

हिमाचल प्रदेश तेतीस करोड़ देवी-देवताओं की पावन भूमि स्वीकारी जाती है। यहां की पवित्र मिट्टी के अणु-अणु में देवी-देवताओं का अमिट अस्तित्व विद्यमान है। हिमाचल प्रदेश के आप किसी भी गांव में चले जाइए आप को कोई न कोई छोटा या बड़ा, नया या पुराना मन्दिर मिल जाएगा। अमुक मन्दिर कैसे बना, उस में कौन सी देवी अथवा देवता की प्रतिमा स्थापित है। अमुक देवी अथवा देवता अमुक गांव में कैसे प्रगट हुआ। उन के इस प्रकार किसी भी गांव में प्रकट होने के पीछे कौन सी कथा कौन सी कहानी जुड़ी है ? इन सब प्रश्नों का उत्तर आप को किसी भी गांव में बड़ी सरलता से उपलब्ध हो जाएगा। जिस का मूल कारण है मानव मन की भावनाएं। भावना ही तो है जो हृदय पटल के भीतर अमिट आस्था को जन्म देती है अटल विश्वास को पैदा करती है। मानव मन के भीतर जब अटल विश्वास और अमिट आस्था अपनी सहज प्रवृति में ढल जाती है तब कहीं जाकर मनन, चिन्तन और स्मरण जो मानव के व्यक्तिपरक नैसर्गिक गुण होते हैं अपनी मूल भूत शाश्वत, शक्तियों के रूप में उजागर होते हैं। धीरे-धीरे मानव मन की प्रक्रिया सत-असत्, गुण-दोष, शुभ-अशुभ, हर्ष-शोक, जय-पराजय जैसे अन्तर्द्वंदों के मध्य डोलती हुई डगमगाती है तब कहीं भटका हुआ मन अशुभ पर शुभ ग्रहण करने की कामना से, शोक पर हर्ष की शाश्वत विजय स्वीकारने में, पराजय को जीत में बदलने के लिए किसी ऐसी अपरिमित असीम, शक्ति को तलाशता है जो मात्र मानव की विश्वास जनित मूर्ति के अमूर्त रूप के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होता। वह विश्वास अपना आत्मिक स्वरूप लेकर भले ही मनुष्य में प्रगट हुआ हो या किसी देवी-देवता या किसी अलक्षित शक्ति में। इसी आधार भूत विश्वास को ले कर प्रकृति में प्रसूत मानव ने चांद, सूरज, धरती, आकाश, वर्षा, अग्नि यहां तक कि वर्षों तक की पूजा प्रारम्भ की थी प्रायः मानव अपनी आकांक्षाओं की, अपनी इच्छाओं की पूर्ति चाहता है। वह प्रसन्न चित्त जीवन बिताना चाहता है भले ही उसे भूत, प्रेत या मशान किसी की भी पूजा स्वीकार करनी पड़े। भय और संत्रास से छुटकारा प्राप्त करने का मात्र एक ही साधन स्वीकारा गया है वह यह कि किसी ऐसी शक्ति की पूजा जो चमत्कृत करने वाली हो और कष्टों को मिटाने वाली हो। इसी विश्वास को लेकर हिमाचल प्रदेश में आर्य और अनार्य लोगों ने विभिन्न शक्तियों को पूजा। भू-देवता, नाग पूजा, त्रिदेव पूजा, शिव पूजा, ग्राम देवता पूजा तथा विभिन्न देवियों की पूजा आज भी हिमाचल प्रदेश में प्रचलित है।

चम्बा, हिमाचल प्रदेश का अभिन्न अंग रहा है। चम्बा जनपद में भी देवी-देवताओं के अटल विश्वास और अमिट आस्था को झुठलाया नहीं जा सकता। चम्बा का चाहे भटियात क्षेत्र हो या ब्रह्मपुर भरमौर जनपद, चौराह क्षेत्र हो या पांगी जनपद यहां के देवी-देवताओं से सम्बद्ध विश्वास अटल और अमर है। चम्बा जनपद में इसी विश्वासके बल बूतें, यहां आए वर्ष, तीज, त्यौहार, मेले, छिंजे, जात्राएं देखने को मिलती हैं। पांगी जनपद को ही ले लीजिए त्यौहरों में बार. इबार, शील, परीद, पुनाही, शिवरात्रि, उत्तरायण, बाजगी, जन्माष्टमी तथा जात्राओं में चौरी देवी जात्रा, इवान जात्रा, त्वान जात्रा, कुथाल जात्रा, घिशाल जात्रा, हिलोर जात्रा, नाग जात्रा, छासग जात्रा, घानेल जात्रा, मुखी जात्रा, फूल जात्रा तथा मिण्डल जात्रा अपना-अपना अलग-अलग अस्तित्व कथानक और आत्म विश्वास रखती हैं। वर्ष भर में कौन सा ऐसा महीना है कि जिस में कोई तीज त्यौहार न हो कोई मेला न हो कोई जात्रा न हो। इन सभी सांस्कृतिक महोत्सवों अथवा पर्वों के पीछे हमें कोई न कोई ऐसे कथानक, ऐसे आख्यान उपलब्ध हो ही जाते हैं कि जिन को सुनकर आधुनिक वैज्ञानिक युग में विश्वास कर लेना कठिन हो जाता है। फिर जन विश्वास की अहवेलना किसी भी मूल्य पर नहीं की जा सकती। मिंधल गांव से सम्बन्ध एक ऐसे ही जन विश्वास का कथानक जुड़ा है। मिंधल गांव की भगवती माता के साथ मिंधल भगवती कैसे अस्तित्व में आई यह भी एक रोचक घटना है।

चम्बा की पांगी तहसील में मिंधल एक गांव है। जहां अगस्त-सितम्बर मास के आस-पास भगवती मिंधल की जात्रा लगती है। पांगी की मनोहारी छटा में मुस्कराता हुआ गांव मिंधल आज भी वहां अपनी आत्म विश्वास की ऐतिहासिक लोक गाथा को संजोए हुए हैं। विश्वास किया जाता है कि जहां पर मिंधल गांव में आजकल मिंधल भगवती का मन्दिर स्थापित है वहां किसी ज़माने में एक बुढ़िया का घर था। यह घर दो मंज़िला था। ऊपर की मंज़िल में बुढ़िया का परिवार रहता था और नीचे की मंज़िल में ढोर यानी की पशु। बुढ़िया बेचारी विधवा थी और उसके पति का देहान्त कुछ समय पूर्व हो चुका था। उसके सात बेटे थे। वह सत्तपुति थी। सात पूत्रों की मां होना, दूधों नहाना पोतों फलना उसके भाग्य में तो था परन्तु दुर्भाग्यवश भाग्य की विडम्बना कि अब वह विधवा थी और जैसे-तैसे अपने बेटों के सहारे अपनी जिन्दगी के बचे-खुचे दिन गुज़ार रही थी। बुढ़िया मां के सातों बेटे जवान हो चुके थे और सभी का विवाह भी सम्पन्न हो चुका था। बुढ़िया का क्या नाम था। बेटों के सम्बन्ध में क्या विस्तृत जानकारी थी। यह सब तथ्य आज प्रश्नवाचक चिन्ह बनकर रह गए हैं। फिर भी सातों जवान बेटों का पैतृक व्यवसाय था। वे सभी मिल-जुल कर ऐसी ज़मीन पर खेती बाड़ी करते थे जिस ज़मीन को शासन कहा जाता था। शासन राजा द्वारा प्रदत्त वह जमीन होती थी जिस का लगान राजा को नहीं देना पड़ता था और उस पर कर मुक्त निःशुल्क खेती होती थी।

सभी सातों पुत्र प्रातः की पहली किरण के फूटने से पहले ही अपनी-अपनी पत्नियों के साथ खेतों में काम करते, हल जोतते, गुड़ाई करते, फसल आने पर फसल काटते व घर लाते। बेचारी

बुढ़िया अपने सभी पुत्रों और पुत्र-वधुओं को खाना बनाती और बड़े प्यार से परोसती और उन्हें खिलाती। शेष समय में घर के आंगन की देखभाल करती।

एक दिन प्रातः ही बुढ़िया के बेटे, अपनी-अपनी पत्नियों के साथ खेतों में काम करने निकल गए और बूढ़ी मां रसोई घर में उनके लिए खाना बना रही थी। अचानक बुढ़िया मां ने देखा कि एक काला पत्थर रसोई के चूल्हे के मध्य राख के भीतर से उभरा। मां बुढ़िया ने उसे चूल्हे का पत्थर समझकर दबाना चाहा और चिमटे से उसे राख के भीतर दबाने की कोशिश की परन्तु जैसे ही वह काले पत्थर को दबाने की कोशिश करती वह और भी ऊपर उठता। लगभग सप्ताह भर यह सिलसिला चलता रहा वह काले पत्थर को दबाने का हर सम्भव प्रयास करती परन्तु काला पत्थर है कि दबने का नाम ही नहीं लेता उसे प्रतिदिन के भोजन बनाने में दिक्कत आने लगी। थके हारे शाम को जब उसके बेटे और बहुएं दिनचर्या का काम काज करके घर लौटते तो वह बुढ़िया मां काले पत्थर के उगने की घटना सुनाती परन्तु सभी परिवार के सदस्य उसे सौदाई और सठियायी समझ कर उसकी बातों पर ध्यान न देते। बेचारी बुढ़िया पर बड़ा तरस आता। वह झुंझला उठती और इसी अद्भुत घटना की चर्चा करने गांव के आस-पड़ोस में निकलती परन्तु आस-पड़ोस के गांव वाले लोग बुढ़िया को पागल समझकर टाल देते। अभिप्राय: यह कि किसी ने भी काले पत्थर के यथार्थ को जानने का भूलकर भी प्रयत्न नहीं किया। आखिर होनी तो होकर ही दम लेती है। भला बुढ़िया, उस के परिवार और गांव वाले लोगों के भावी भविष्य को कौन बदल सकता था।

संयोगवश एक दिन जबकि बुढ़िया मां का समस्त परिवार खेतों में काम करने गया हुआ था और बुढ़िया अपने बेटों के लिए खाना बना रही थी कि तभी वहां चूल्हे में काला पत्थर उभरा। बुढ़िया मां फिर परेशान हुई और झुंझला कर पत्थर को दबाने की भी कोशिश की परन्तु इस बार काले पत्थर से उसे एक आवाज सुनाई दी।

'मुझ से डरो मत! मैं चामुण्डा देवी हूं मैं यहां पर अपनी स्वेच्छा से प्रकट हुई हूं और तुम्हारे घर में रहना चाहती हूं। मेरी सेवा करो और मन्दिर बनाओ। बुढ़िया एक पल तो ठगी-ठगी सी रह गई कि चामुण्डा मां ने फिर कहा —

'जाओ और जल्दी से अपने बेटों को बुलाओ मैं उन से भी मन्दिर बनाने को कहूंगी।

फिर क्या था बुढ़िया मां आधा खाना बनता छोड़कर खेतों की तरफ हो ली। खेतों में उस के सभी बेटे अपना-अपना काम कर रहे थे। बड़ा बेटा एक चूड़ (बैल) से हल जोत रहा था। दूसरा चूड़ (बैल) मर जाने से उन्हें हल जोतने में कठिनाई तो थी परन्तु सभी भाई मिल-जुल कर जैसे-तैसे हल जोत रहे थे। भागती हुई बुढ़िया मां को आते देखकर उसके सभी बेटे और बहुएं हैरान हो गईं। वे सोचने लगे कि आज मां इतनी जल्दी हमें खाना बनाकर कैसे ले आई?

वह भाग कर क्यों आ रही है ? इतने में बुढ़िया मां समीप आ चुकी थी । बुढ़िया मां ने हांफते-हुए कहा—'सभी बेटे घर चलें। घर में चामुण्डा मां प्रत्यक्ष हुई है वे हमारे घर में रहना चाहती है, अपना मन्दिर बनवाना चाहती है ।'

बुढिया मां के इस कथन पर सभी लड़के एक पल तो आवाक रहे. दूसरे पल उन में से एक ने कहा मां तुम्हारा भेजा खराब है । दूसरे ने कहा इतना सारा काम बाकी है । तीसरा चिलाया हमें भूख लगी है. हम समझे थे खाना लाई हो । चौथा बौखलाया मां बड़ी कठिनाई से तो एक बैल के साथ हम हल जोत कर परिश्रम की रोटी कमा रहे हैं – समय व्यर्थ बरबाद न करो और जाकर हमें शीघ्र खाना लेकर आओ । बुढ़िया मां ने एक बार फिर चामुण्डा मां की दुहाई देकर घर चलने का विनम्र आग्रह किया । इस पर उन में से एक बेटे ने कटु वचनों में कहा —

'क्या तुम्हारी भगवती चामुण्डा एक चूड़ के साथ हल जोतने में सहायता कर सकती है क्या वह चामुण्डा हमें हल जोतने के लिए शासन अर्थात कर रहित भूमि प्रदान कर सकती है। बुढ़िया को अपने बेटों की प्रतिक्रिया पर बड़ा तरस आया और निराश होकर लौट गई ! जैसे ही वह बुढ़िया मां घर पहुंची कि मां भगवती चामुण्डा ने पूछा —

'क्या तुम्हारे बेटे नहीं लौटे'?

इस पर बुढ़िया मां ने सारी की सारी राम कहानी कह सुनाई । भगवती मां को क्रोध आना स्वाभाविक था । मां भगवती ने आवेश में आकर शाप दिया —

'जा बुढ़िया मां तेरे सातों बेटे और बहुएं पत्थर बन जाएं और तेरे गांव वाले एक ही बैल से सदा हल जोतें ।'

देवी का वाक्य पत्थर की लकीर थी । शाप के अनुसार सातों बेटे और बहुएं पत्थर की शिलाओं में परिवर्तित हुए । आज भी मिंघल गांव में बुढ़िया मां के पास बुढ़िया के परिवार को पत्थरों की शिलाओं में देख सकते हैं । आज भी उस गांव के लोग एक ही चूड़ से हल जोतते हैं । इस कथानक से सम्बन्ध एक कहावत भी है --

एक बैंल से हल लगे, शिला बनें सब पूत ।
भावना बना जो निष्टा करे, कामना हो फली भूत ।।

भगवती चामुण्डा ने बुढ़िया मां से कहा कि तुम गांवों में जाकर गांव के लोगों को मेरा मन्दिर बनाने के लिए कहो । बेचारी बुढ़िया उल्टे पांव लौट गई और गांव में गली-गली जाकर प्रत्येक घर का द्वार खटखटाया परन्तु वह जिस-जिस घर में जाती या तो लोग चारपाई पर सोए मिलते अथवा सूत कातने में लीन । बुढ़िया ने सभी घरों में भगवती चामुण्डा की बात कही, मगर किसी भी गांव वाले ने विश्वास नहीं किया । जब बुढ़िया ने देखा कि यहां मेरी बात कोई भी नहीं सुनता तो वह निराश होकर लौट आई । भगवती मां ने बुढ़िया को अकेले आते देख कर क्रोध

कर लिया और बुढ़िया से स्पष्टीकरण मांगने के पश्चात् मां भगवती चामुण्डा ने दूसरा शाप भी दिया और कहा—'मैं शाप देती हूं कि यहां के गांव वालों को सोने के लिए खाट तक नसीब न हो और उनका सूत कातने का उद्योग भी न फले। प्रायः आज तक भी रूढ़िगत विश्वास को लेकर मिंधल गांव के लोग भूमि पर सोते हैं और न ही उनका सूत कातने का धन्धा फलता।

प्रातः होते ही जैसे गांव वालों को विश्वास हुआ कि बुढ़िया का परिवार खेतों में देवी के कोप के कारण शापातुर हो पत्थर बन चुका है सभी गांव वाले एकत्र हो बुढ़िया मां के घर आए और यह देखकर चकित हो गए कि बुढ़िया मां भगवती चामुण्डा के आगे डर के मारे थर-थर कांप रही थी परन्तु देवी भगवती तो जानती थी कि बेचारी बुढ़िया का कोई भी कसूर नहीं अतः भगवती मां ने बुढ़िया को धीरज बंधाया और कहा 'बुढ़िया मां मैं तुम से प्रसन्न हूं'।

इस पर बुढ़िया ने कहा, 'मां मुझे क्षमा करो, मैं निर्धन हूं मेरे पास साधन भी नहीं है। मैं आप का मंदिर बनाने में असमर्थ हूं।' इस पर देवी भगवती ने कहा

'मैं तुम पर प्रसन्न हूं, मांगो क्या मांगना चाहती हो, मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगी क्योंकि तुमने मेरा कहना माना और मेरी सेवा की है'।

बुढ़िया की मानो चेतना लौट आई धीरज रखते हुए दोनों हाथ जोड़कर बुढ़िया ने कहा - 'मां भगवती मुझे भी अपनी शरण में ले लो, पत्थर बना दो, क्योंकि मैं अबला हूं मेरा पालन पोषण करने वाले सभी पुत्र पत्थर बन चुके हैं। मेरी देखभाल करने वाला यहां कोई नहीं, कृपा करके मुझे भी पत्थर बनाकर मुक्ति प्रदान कीजिए। बुढ़िया की इस प्रकार की इच्छा सुनकर एक पल तो देवी भगवती चकित हुई परन्तु दूसरे ही पल वरदान दिया -

जा बुढ़िया मां तुम्हारी आशा पूरी हो —इतना ही नहीं भविष्य में मेरे पूजन से पहले तुम्हें पूजा जाए, तुम पूजनीय हो' - और देखते ही देखते बुढ़िया गांव वालों के सामने पत्थर बन गई।

जैसे ही देवी भगवती का यह चमत्कार गांवों के लोगों ने देखा कि वे डर के मारे भयभीत होकर मां भगवती के चरण कमलों में गिरकर क्षमा मांगने लगे। अपनी भूल का पश्चाताप करने के लिए उन्होंने प्रण किया कि वे एक ही बैल से खेती करेंगे, भूमि पर ही सोएंगे, सूत का उद्योग नहीं करेंगे तथा मां भगवती चामुण्डा का मन्दिर बनवाएंगे। गांव वालों की ऐसी प्रतिज्ञा को सुनकर देवी अन्तर्ध्यान हो गई और अमुक काले पत्थर जो बुढ़िया के रसोई घर में निकला था को मां भगवती चामुण्डा के रूप में पूजा जाने लगा। मिंधल वाले लोगों ने मिंधल भगवती का मन्दिर बनाया उसमें मां भगवती चामुण्डा की विधिवत स्थापना की और भगवती की पूजा का श्री गणेश हुआ। स्वीकार किया जाता है कि देवी मां की प्रसन्नता के पश्चात मिंधल गांव में महामारी.

अनावृष्टि, अतिवृष्टि, व्याधि आदि का प्रकोप पड़ता ही नहीं और देवी की भव्य कृपा से सुख शान्ति रहती है। चम्बा जनपद के अन्य क्षेत्र जब आपदाओं का शिकार होते हैं तब पांगी क्षेत्र में सुखमय वातावरण छाया रहता है। उपरोक्त तथ्य की पुष्टि के लिए तो कभी कभार चम्बा के राजाओं को भी शंका होने लगती थी कि क्या सचमुच मिंधल देवी की कृपा का यह फल है कि पांगी क्षेत्र आपदाओं से अप्रभावित रहता है। विश्वसनीय है कि एक बार चम्बा का राजा अपने सामन्तों के साथ देवी की परीक्षा लेने मिंधल पहुंचा और देवी मिंधल को चमत्कार प्रदर्शन के निमित्त चुनौती दी। वह मां भगवती की मूर्ति को उठा कर तिरस्कृत करना चाहता था। कहते हैं कि जैसे ही चम्बा के राजा चढ़त सिंह ने मां भगवती की मूर्ति को स्पर्श किया वह मूर्ति से चिपक गया। लाख प्रयत्न किए परन्तु राजा चढ़त सिंह मूर्ति से बुरी तरह से चिपक गया। राजा की सहायता के लिए सामन्त लोग भी आए परन्तु वे भी असफल रहे। निराश होकर राजा चढ़त सिंह ने मां भगवती से अपनी भूल के लिए क्षमा मांगी। राजा चढ़त सिंह ने कहा कि मां भगवती यदि उस के हाथ को छोड़ दे तो वह भी मां भगवती की कुल देवी की तरह पूजा करेगा। इतना ही नहीं वह देवी के चरण कमलों में पांच गांव भी दान करेगा। कहते हैं कि जैसे ही राजा ने सच्चे मन से क्षमा याचना की और अपना एक हाथ श्रद्धा पूर्वक नमस्कार के निमित्त आगे बढ़ाया कि राजा का दूसरा हाथ भी छूट गया। इतिहास साक्षी है कि राजा चढ़त सिंह ने चम्बा लौट कर अपने देवी को दिए हुए वचन का दृढ़ता से पालन किया गया और पांच ग्रामों का लगान देवी के नाम करके मन्दिर चढ़ाना शुरु किया। यह भेंट सभी चम्बा नरेश चढ़ाते रहे।

इसी मां बुढ़िया के मकान में जहां आज मिंधल देवी का मंदिर बना है प्रतिवर्ष मां भगवती मिंधल देवी की जात्रा लगती है। यह जात्रा अगस्त-सितम्बर में भाद्रों मास की पूर्णिमा को लगती है। लगभग दो महीने पूर्व जात्रा की तैयारियां आरम्भ होती हैं भाद्रपद की पूर्णिमा के दिन जात्रा सम्पन्न होती है। जात्रा के एक दिन पूर्व देवी मिंधल का गुर आता है। उसके आगमन को ही देवी आगमन का सूचक समझकर समस्त पांगी जनपद के लोग आते हैं अपनी-अपनी मन्नतें मांगते हैं। मन्नतें पूरी होने पर या सम्भावना में बहुमूल्य भेंटें चढ़ाते हैं। बुढ़िया मां के विधिवत पूजन के पश्चात् देवी भगवती की पूजा होती है। रात को मन्नत के रूप में भेड़-बकरों की बलियां चढ़ाई जाती हैं। मन्दिर के प्रांगण में पूर्णिमा की रात को मेले की अनोखी छटा देखते ही बनती है। श्रद्धालु दूर-दूर से आकर जात्रा में भाग लेते हैं। गवाड़ी, हिलौर, किलाड़, कलौल, कुमार, परमार, फिण्डपार, साच, पिण्डरु, शौर तथा थाण्डाल गांव के लोग यात्रा में भाग लेते हैं। मेले की पूर्णिमा को देवी की स्तुति में भजन गाये जाते हैं संकीर्तन होता है। गांव के लोग सामूहिक नृत्य की लहर में अपने को लीन करते हैं और दूसरे दिन लौट जाते हैं।

हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय सरस्वती
नगर सावड़ा, जिला शिमला।

चिमनू बाबा—एक ऐतिहासिक पुरुष

□ अमर देव आंगिरस

बाघल रियासत अपनी संस्कृति के लिए विख्यात रही है। अर्की के राजमहलों को देखकर आज भी आभास होता है कि यह रियासत देश की अन्य रियासतों से राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से पीछे नहीं रही। प्राचीन किलों, मन्दिरों तथा भग्न राजमहलों को देखकर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि मध्यकालीन भारत में यह एक सम्पन्न रियासत थी तथा जन साधारण और शासक वर्ग में पर्याप्त सांमजस्य था। अर्की के प्रसिद्ध मन्दिर तथा लोक देव—बाड़ा देव, धारा वाला देव (बघाटड़), बणिया देवी, लक्ष्मी नारायण मन्दिर अर्की, चण्डी मन्दिर, बाड़ू बाड़ा (संभवतः सहदेव) माहूनाग देव, ऋषि हरसंग देव आदि मध्यकालीन राजाओं की धार्मिक धरोहर माने जा सकते हैं।

बाघल नरेश दशहरे के अवसर पर लक्ष्मी नारायण मन्दिर अर्की से मूर्तियों को रंग-बिरंगी पालकियों में सजाकर तत्कालीन छोटी काशी तथा विद्वानों की नगरी बातल के शिव मन्दिर तक शोभा यात्रा के रूप में ले जाते थे। विजय प्रयाण की तरह युद्ध प्रवीण कोतलों (घोड़ी) की सुसज्जित सवारी द्वारा संपूर्ण राज वैभव की तड़क-भड़क के साथ, सामन्त वर्ग के साथ, अपनी कुल देवी जखौली देवी तक पूजन-अर्चन तथा लोकोत्सव के लिए अर्की नरेश प्रति वर्ष जाया करते थे। यह राजकीय लोकोत्सव था। जखौली देवी तथा बणिया देवी अर्की नरेश के पूर्वजों द्वारा मान्य कुल देवियां थीं। यद्यपि जखौली देवी को लोक विश्वास के अनुसार समुत्पन्न माना जाता है किन्तु शैली शिल्प तथा वास्तु कला की दृष्टि से ऐसे मन्दिरों का निर्माण मध्य प्रदेश में छठी शताब्दी से बारहवीं, तेरहवीं शताब्दी तक मिलता है। संभव है अर्की राजवंश जो ई० सन् १००० से पूर्व विद्यमान था—के द्वारा इस मन्दिर का निर्माण किया गया हो। अर्की राजवंश तथा इतिहास की ठोस सामग्री के अभाव में, इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के सांस्कृतिक अवगाहन की लोक देवों के माध्यम से खोज बीन की जा सकती है।

राजवंश अर्की प्रसिद्ध ऐतहसिक राजा भोज (१०१०-१०६५) का उत्ताराधिकारी है। बाघल रियासत में प्रथम प्रवेश इस वंश ने ३६ पीढ़ी पहले किया था। राजा भोज सूर्यवंशी परमार वंश (समानार्थक पनवार अथवा पंवार) के राजा थे। इसी वंश का १६वीं १७वीं शती में गूंगा राणा

नाम का एक शासक रहा है जो मुस्लिम आक्रमणों के भय से पहाड़ियों की खाक छानता रहा। यही कारण है कि लोकमत के अनुसार इनके महलों के खण्डहर बाघल क्षेत्र के डुगली, दाड़ला, धुन्दन तथा मूटरु में पाये जाते हैं। कहते हैं कि यह शासक गूंगा था। इसके नाम की सही जानकारी नहीं मिलती। एक अनुमान के अनुसार यह शासक राजा जगत सिंह से पूर्व राणा भूप चन्द था जिसे अंग्रेज सरकार ने राजा नहीं माना था।

एक अन्य जनश्रुति के अनुसार गूंगा राणा यहां का स्थानीय निवासी था। उसकी रानी 'पहाड़न की रानी' कही जाती है। सर्वप्रथम इसने अपनी राजधानी डुगली (दाड़ला) को बनाया। यह स्थान बिल्कुल दूर-दराज तथा सैन्य सुरक्षित क्षेत्र था। यह चारों ओर घाटियों से घिरा समतल एवं उपजाऊ क्षेत्र था अत: जीवन की सभी सुविधाओं तथा आत्मरक्षण की दृष्टि से उत्तम स्थान था। कहते हैं गूंगा राणा की वाणी सर्वप्रथम यहीं खुली थी। इसे डुगली वाले चिमनू बाबा का आर्शीवाद मिला था। इसलिए गूंगा राणा ने चिमनू बाबा की स्मृति में इस स्थान पर एक मन्दिर का निर्माण करवाया जो आज भी विद्यमान है। प्राचीन काल से आश्विन संक्रान्ति सायर मेले के अवसर पर यहां राज स्तर पर मेला मनाया जाता था जिसमें सारे क्षेत्र के किसान अपनी फसल का कुछ भाग चिमनू बाबा के नाम पर दान देते थे जिससे कई दिनों तक अन्न-यज्ञ चलता था। लोगों का विश्वास था कि चिमनू बाबा की कृपा से उनकी फसलों की रक्षा होगी।

चिमनू बाबा कौन थे ?

इनके विषय में कहा जाता है कि ये एक चमत्कारी सिद्ध पुरुष थे। ये सिख गुरु परंपरा में नहीं आते। वस्तुतः इन्हें 'गुरु' के रूप में माना जाता है। ये बाबा बालक नाथ के सान्निध्य प्राप्ति के लिए बाघल क्षेत्र के इस बीहड़ तथा उच्च शिखर पर यौगिक क्रियाओं के लिए आ बसे थे। सामने उच्च शिखर कठपोल (भांगल) पर्वत पर बाबा बालक नाथ की धूनि भी तो थी। बाबा बालक नाथ के आशीर्वाद से बाबा चिमनू 'सिद्ध' कहलाये। बाबा चिमनू के आशीर्वाद से आधिव्याधियां ठीक हो जाया करती थीं।

एक किंवदन्ती के अनुसार चिमनू राजा के पास नौकर थे। एक बार राजा ने अपने दो नौकरों के साथ इन्हें कहलूर (बिलासपुर) में पुड़ियां (शक्कर) लाने के लिए भेजा। लौटते हुए वे सब एक खड्ड के पास आराम कर रहे थे कि चिमनू बाबा ने अपनी थैली में से शक्कर निकाल-निकाल कर मछलियों को फैंक दी और थैली में खड्ड की रेत भर दी। घर पहुंचने पर औरों के थैलों में तो शक्कर निकली और इनके थैले से सोने की डलियां।

एक दन्त कथा के अनुसार बाबा चिमनू जात के कोली थे। ये गूंगा राणा की रानी के साथ पहाड़ों से आये थे जैसे कि प्राचीन परिपाटी के अनुसार रानियों के साथदहेज के अतिरिक्त नौकर चाकर सेवक आदि आते-जाते थे। राजा की गऊओं को बाबा चिमनू चराते थे। इन गौओं के साथ एक अन्य गाय रोज मिल जाती थी जो रोज शाम ढलते ही लुप्त हो जाती थी। बारह

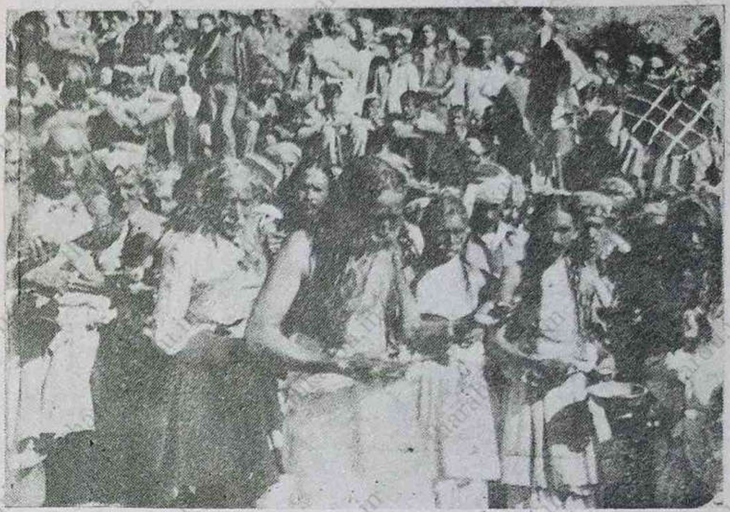

कमान्द गांव (कुल्लू) में हारगी (आदि ब्रह्मा तथा पराशर ऋषि के मिलन) उत्सव के अवसर पर देऊ खेल

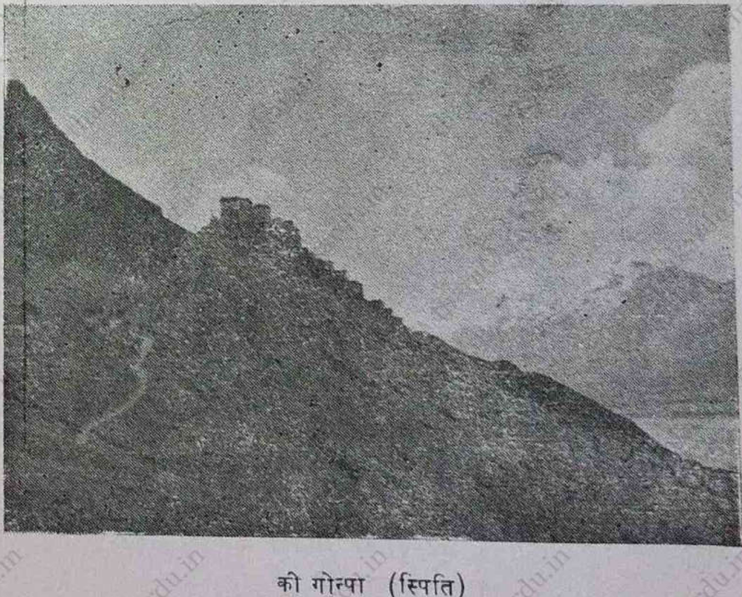

की गोन्पा (स्पिति)

कमान्द गांव (कुल्लू) में हारगी के अवसर पर निकाली गई प्राचीन मशालें तथा तेलदान

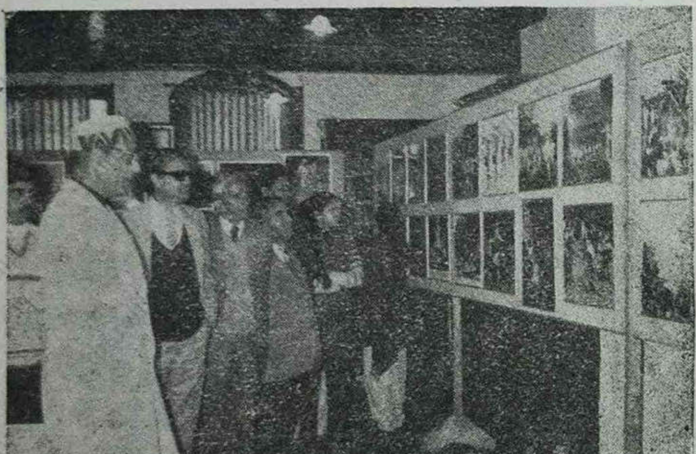

महामहिम राज्य पाल हि० प्र० वाईस एडमिरल आर०के०एस० गांधी, अकादमी द्वारा शिमला में आयोजित यूनेस्को की आठवीं छायाचित्र चल-प्रदर्शनी का अवलोकन करते हुए

वर्ष से यह सिलसिला चलता रहा। एक दिन इन्होंने उस दिव्य गौ की पूंछ पकड़ ली। गौ एक गुफा में घुस गई जहां उसे लक्ष्मण यति के दर्शन हुए। उस स्थान पर गौ के स्तनों से स्वयं दूध की धारा बहने लगी, जिससे वहां एक सरोवर बन गया। यही लक्ष्मण धूनि कही जाती है। अन्त में चिमनू बाबा भी इसी गुफा में लोप हो गए। उनकी स्मृति में बाबा चिमनू के मन्दिर का निर्माण किया गया है।

सिद्ध ड्वार : यह बाबा चिमनू की गुफा है। यहां पर ये तपस्या करते थे। इसकी लम्बाई चौड़ाई २०-२५ फुट है। गुफा के एक कोने में एक बावड़ी है। इसके जल को बहुत पवित्र माना जाता है। विक्षिप्त व्यक्तियों तथा चर्म रोगियों को इस जल में स्नान करवाने से रोग-मुक्ति का विश्वास किया जाता है। यह ड्वार प्रकृति का एक अजूबा है।

चिमनू बाबा मन्दिर तथा लक्ष्मण धूनि :

यह मन्दिर १०-१२ फुट ऊंचा मन्दिर है। सैंकड़ों वर्ष पुराना यह एक गुम्बदाकार साधारण मन्दिर है। एक पहाड़ी के शिखर पर बने इस मन्दिर पर सूर्य की अन्तिम किरणें पड़ती हैं। इसके साथ ९-१० मन्दिर नुमा ३ फुट ऊंची महंतों की समाधियां हैं। पिछले ८० वर्षों से कोई नई समाधि नहीं बनाई गई है। मन्दिर के प्रांगण में ४ फुट चबूतरे पर कुछ समय पूर्व पांडवों की मूर्तियां स्थापित की गई हैं। बाईं ओर २० फुट ऊंचे स्तम्भ पर झंडे के साथ गौ की पूंछ के बाल लटके होते हैं जो उस दिव्य गाय की स्मृति दिला देते हैं। मंदिर के अन्दर चौकी पर बाबा चिमनू का चिमटा गढ़ा है तथा बाबा चिमनू की पवित्र टोपी रखी गई है साथ में पवित्र खड़ाऊं भी हैं। बायें कोने में अखण्ड अग्नि सुलगते (गोटे) उपलों के रूप में प्रज्वलित रहती है। इसकी भस्म बहुत पवित्र मानी जाती है। इसकी भस्म ही चिमनू बाबा का प्रसाद है।

चिमनू बाबा का मन्दिर उनकी दिव्य शक्तियों की स्मृति ही नहीं, वरन् बघल रियासत के एक महत्वपूर्ण शासक की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि भी उजागर करता है। गूंगा राणा की ऐतिहासिकता बाबा चिमनू से जुड़ी हुई है जिससे इस रियासत के एक अन्धकार पूर्ण काल पर पर्याप्त प्रकाश पडता है।

भाषाध्यापक
राजकीय उच्च पाठशाला दाड़ला,
जिला सोलन, (हि०प्र०) १७११०२

हिमाचली लोक नृत्यों में देव परँपराएं

□ मुरारी शर्मा

हिमाचल की धरती में देवी-देवताओं का निवास है। यहां की शान्त सुरम्य घाटियों में वैदिक कालीन ऋषि-मुनियों ने साधना की वेदों की रचना करके ही उन्होंने देवत्व प्राप्त किया। यही कारण है यहां के अधिकांश देवता ऋषि देव कहलाते हैं। ये देवता यहां के जनमानस से सीधे जुड़े हुए हैं। पहाड़ी जनमानस की जहां इन देवी-देवताओं में अटूट श्रद्धा व आस्था है वहीं ये देवी-देवता अपनी चमत्कारी देवी शक्ति से अपने श्रद्धालुओं के कष्टों का निवारण करते हैं और समय-समय पर अग्नि परीक्षाएं देकर जनमानस में अपने प्रति विश्वास को डोलने नहीं देते।

हिमाचल में देवी देवता जनमानस की भावनाओं में इतने गहरे तक जुड़े हैं कि वे एक दूसरे के सुख-दुःख के साथी बन जाते हैं। मेले त्यौहारों में जहां पहाड़ी जनमानस अपनी परम्परागत वेशभूषा में झूमता गाता नृत्य करता है वहीं पर ये देवी देवता भी उसकी खुशी में शामिल होकर भोले-भाले लोगों की खुशियों को बांट लेते हैं। देव खेल या गुर नृत्य इस बात का परिचायक होता है कि देवता भी साधारण मनुष्य की तरह नृत्य का आनन्द लेता है।

वैसे तो इन मेलों में दिन रात चलने वाला लोक नृत्य नाटी विख्यात है। मगर कुल्लू जनपद में लाहलड़ी और हुलकी लोकनृत्य काफी लोकप्रिय है। इन नृत्यों की विशेषता यह है कि इनमें जहां जनमानस झूमता गाता है वहीं देवी-देवता की पालकियां (रथ) भी साथ-साथ नृत्य करती हैं—ऐसा हुलकी नृत्य में होता है। यह नृत्य अधिकतर मेलों में होते हैं।

लाहलड़ी नृत्य :

लाहलड़ी नृत्य को सम्वाद नृत्य भी कहा जा सकता है। क्योंकि इसमें लड़कों और लड़कियों की दो अलग-अलग टोलियां बनती हैं जो एक गीत को सम्वाद के रूप में प्रस्तुत करते हैं। लोकगीतों की उन्मुक्त धारा को तुकवन्दी का रूप दिया जाता है। इसमें शर्त यह होती है कि जिस टोली से गीत की लाईन (टप्पा) न जुड़ सके वह हार जाती है।

कुल्लू जनपद में लाहलड़ी का बहुत प्रचलन है। लाहलड़ी गाने वालों की टोलियां मेले के दिनों में रात के समय बारी -बारी प्रत्येक घर में जाती हैं। हरेक गांव के युवक, युवतियां अपनी-

अपनी टोलियों के साथ जिस गांव में मेला हो वहां प्रत्येक घर में जाकर लाहलड़ी नाचकर आतिथ्य ग्रहण करते हैं, और मेज़बान बड़ी खुशी-खुशी उनकी आवभगत करते हैं। इसमें यह आवश्यक नहीं होता कि आने वाले जान पहचान के ही हों वे अजनबी भी हो सकते हैं। मगर फिर भी वे पूरे अधिकार से प्रत्येक घर में जाते हैं और गृहस्वामी भी अजनबी मेहमानों की पूरी खातिर तव्ज्व करता है। वह उन्हें पूरे आदर व सम्मान के साथ रोटी के साथ सूर (यह चावल से तैयार किया नशीला पेय-पदार्थ होता है) और आम शराब पेश करता है। मेले वाले दिन हर घर में ये तीनों पेय पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इन्हें बड़े गौरव के साथ मेहमानों को पेश किया जाता है, अपनी इच्छा के अनुसार टोली का हर सदस्य इन्हें ग्रहण करता है। यह क्रम सारी रात चला रहता है, रात भर एक-एक घर में सैकड़ों लोग आकर चले जाते हैं। एक जगह तीस-चालीस मिनट से ज्यादा नहीं ठहरते हैं। इस तरह नाचते-गाते ये लोग पूरी रात निकाल देते हैं। लाहलड़ी में स्थाई में जो गीत गाया जाता है उसी की तुकबन्दी करके वे गाते रहते हैं जहां तुकबन्दी खत्म हुई वहीं गाना खत्म करके दूसरा शुरु कर दिया जाता है। कुछ गीतों की लाइनें दृष्टव्य हैं। लड़कों की टोली नाचते हुए गाती है।

कुल्लू री ए पाटु आलीए
चलो ऐबे घरा वे जाणा।

तो लड़कियां उससे तुक मिलाती हैं।

कुल्लू री ए पाटु आलीए
झेची मामी लायची दाणा।

इस प्रकार से तुक मिलाकर वे नृत्य करते रहते हैं। इसमें गाने वाले ही नृत्य करते हैं। दूसरे खड़े-खड़े उसका जबाब ढूंढते हैं। जब वे चुप हो जाते हैं तो वे गाते हुए नाचने लगते हैं। इस प्रकार सम्वाद नृत्य करते हुए आतिथ्य भी ग्रहण करते रहते हैं और अपना मनोरंजन भी करते हैं।

हुलकी नृत्य :

मेलों में पहाड़ी जनमानस ही नाच गाकर अपना मनोरंजन करें और देवता उसमें शामिल न हो ऐसा कैसे हो सकता है। पहाड़ों में आज भी देव सता कायम है। लोग कोई भी ऐसा काम नहीं करते जिससे देवता नाराज़ हो। देवता और जनमानस का यह जुड़ाव उनकी आस्था और श्रद्धा का प्रतीक है। बात-बात पर देवता का रूठना और लोगों द्वारा उसे मनाना तथा देवता का झूम-झूम कर लोगों से मिलना देवता और मानव के आपसी प्रेम को दर्शाता है।

फिर देवता भी मेलों में नाचकर अपनी खुशी का इजहार करता है देवता के इस नृत्य को लोक भाषा में हुलकी नृत्य कहते हैं। इसमें देवता को नचाया जाता है साथ में वाद्य वृन्द-फरहरे

करनाल, रणसिंगा का हल तथा छड़ी के साथ लोग भी नृत्य करते हैं। इस नृत्य में जहां मेला होता है उस मैदान के तीन चक्कर लगाए जाते हैं।

इसमें सबसे आगे बाजा बजाने वाले धीरे-धीरे झूमते हुए चलते हैं। उनके पीछे फरहरे (झण्डे) वाले, फिर रणसिंगे, करनाल और काहल वाले। उनके पीछे समान्तर लाईन में गुर एक हाथ में घग्यारा दूसरे हाथ में घण्टी लिए होते हैं। उनके पीछे जो चाहे वह इस नृत्य में शामिल हो सकता है। हुल्की नृत्य का दृश्य देखते ही बनता है। वास्तव में यह मेले का मुख्य आकर्षण होता है। तीन चक्कर लगाने के पश्चात देवता के गुर घण्टी बजाकर नृत्य खत्म करने का संकेत देते हैं। इस प्रकार हिमाचल को देवता और मनुष्य मेलों में नृत्य करके उन्हें सार्थक बनाते हैं।

१३३/७ मोती बाजार,
अप्पर समखेतर मण्डी,
(हि० प्र०) १७५००१

बिलासपुर के चन्देल राजवंश की कला व साहित्य को देन

□ श्याम लाल गुप्ता

बिलासपुर हिमाचल प्रदेश का एक जिला है। जब हिमाचल नहीं बना था और भारत स्वतन्त्र नहीं हुआ था तब यह एक रियासत थी।

जहां अब ज़िले का मुख्यालय है तथा पुराने शहर को उजाड़ कर नया बिलासपुर बसाया गया है, वह स्थान कोई पचास सौ वर्ष पुराना नहीं है। पुराने नगर की स्थापना आज से लगभग पांच सौ वर्ष पूर्व हुई थी।

रियासतें समाप्त होने तक बिलासपुर पर चन्देल राजवंश का शासन था। बिलासपुर १६५६ ई० में इसी वंश के एक सौ चौथे राजा दीपचन्द ने बसाया था जो औरंगजेब का समकालीन था। सहस्रों वर्ष पूर्व जब यह इलाका कहलूर के नाम से जाना जाता था तो यह उजाड़ और बिरल बसा था, तभी चन्देरी से आये हरिहर चन्द के ज्येष्ठ पुत्र वीरचन्द ने यहां राज्य स्थापित किया था। उस समय यहां रुण्ढों के छोटे-छोटे कबीले राज्य करते थे। वे बड़े बहादुर, लड़ाकू थे। इन्हें यह अच्छा नहीं लगा कि कोई इन पर राज्य करे, इनके चार सरदार थे। उत्तर में झण्ड़ा, पूर्व में सांढा, पश्चिम में बांढा और दक्षिण में कहलू।

राजा वीरचन्द ने प्रथम दक्षिण पर हमला किया। कहलू ने अधीनता स्वीकार कर ली, पीछे इसी के नाम पर कहलूर नाम पड़ा, परन्तु तीन सरदार नहीं झुके। अन्त में सब मारे गए। इस प्रकार वीरचन्द ने राज्य की स्थापना की।

वीरचन्द के पुत्र-पौत्र राजधानी को बच्छरेटु ले आए। यह स्थान तहसील घुमारवीं में है। फिर राजा केशव चन्द ने पनौल में राजधानी बनाई, फिर उसके बेटे ताराचन्द ने पंजगाई राजधानी बनाई।

इसके बाद राजा दीपचन्द आया। यह बड़ा प्रतापी और अकलमन्द राजा था। इसने सोचा कि राजधानी राज्य के मध्य होनी चाहिए। उनके साथ दो सन्त, हनुमान और वलीराम तथा

दो फकीर खाकीशाह और ताराशाह सदैव रहते थे। उसने चारों को राजधानी के लिए उपयुक्त स्थान देखने के लिए भेजा। चारों आकर बताने लगे—

शतद्रव तीर मदान बड़ उपवनी रमणीका
चंपवती तट शोभ है षट् मुख थलनी का।
अहै खनेसर निकट ही श्री शंकर आला,
रंगनाथ जिह नाम है भुज चार विसाला।
है बड़ पवन भूमि का गिर अहे भवासा,
भो भूपति तिह भौन रच कीजै निज वासा।

दीपचन्द ने लाहौर अटक जीता था, अतः औरंगजेब ने उसे पांच लाख नकद व शाही-खिलअते दी थी।

इस प्रकार चंपावती और सतलुज के संगम पर, एक अत्यन्त सुन्दर स्थान पर, जिसके एक ओर खनेसर का मन्दिर, दूसरी ओर रंगनाथ का मन्दिर था, नीचे व्यास गुफा थी; वीरचन्द ने नगर व राजधानी की स्थापना की। पहले इस स्थान का नाम व्यासपुर था, दीपचन्द ने बिलासपुर रखा।

इस प्रकार धीरे-धीरे शहर बसने लगा, दीपचन्द ने बहुतेरे मन्दिर, बावड़ियां, धर्मशालायें और हवेलियां बनवाईं। दूर-दूर से व्यापारी आकर बस गए। औरंगजेब ने, राजा दीपचन्द को पांच लाख रुपयों की खिलअत और राजाए-राजगान की उपाधि दी। फिर १९६०-६१ में पुराना शहर भाखड़ा बांध के कारण उजड़ गया, पानी में डूब गया तथा नगर बस गया।

चाहे इसकी सड़कें, गलियां, बाजार, घर, सांडू, महल-मनेरे और सब कुछ डूब गया परन्तु इसका शानदार इतिहास आज भी वैसे का वैसा ही है। आज भी अगर आप पानी में डूबे उन सुनहरे खण्डहरों को देखें तो इस प्रकार लगता है, मानो कोई परी झील में नहा रही हो। जब धुन्ध पड़ती है तो ऐसा लगता है, मानो यह सत्य नहीं, एक स्वप्न हो। बिलासपुर में चन्देल वंश के राजाओं ने राज्य किया।

यह राजवंश एक पराक्रमी, कला तथा वास्तु प्रेमी राजवंश था। इनका राज्य सम्पूर्ण मध्य-भारत में फैला था। ये चन्द्रवंशी क्षत्रीय थे। कई किंवदंतियां हैं कि इनकी व्युत्पति के विषय में प्रथम वर्णन चन्दवरदाई ने पृथ्वी राज रासो में किया है।

विद्वान प्रथम पुरुष अविवाहिता हेमावती के पुत्र चन्द्रवर्मा को मानते हैं तथा इसे ब्रह्मेन्द्र मुनि के महनीय वंश का नाम देते हैं। इनका गोत्र अत्रि चन्द्रायण बताया जाता है। वंशावली इस प्रकार है:-

विश्वसृक् पुराण पुरुष
मुनि' मारिचि अत्रि
मुनि' । 'चन्द्रात्रेय
नृपति' मुजुजाम

मध्य भारत में ताम्र पत्र चन्द्रात्रेया नरेन्द्राणा वंश खजुराहा के शिलालेख कहीं चन्देला-वय, कहीं चंद्रैल बताते हैं। चन्देल इन्हीं का अपभ्रंश है। कवि गणेशसिंह, टिक्का कृष्ण चन्द्र, महाराज आनन्द चन्द के अनुसार चन्देल महाराज ऐलदेव व महारानी विमला की सन्तान हैं।

मेरे मतानुसार चन्देल, चन्द्रैल शब्द का अपभ्रंश है। ये चन्द्र तथा इला (चान्दनी) के संगम से उत्पन्न पुत्र चन्द्र वर्मा की सन्तान हैं। परन्तु चन्देरी, गिद्धौर, चान्दपुर, मदनपुर, चान्हणी, कुमाऊं कान्यकुब्ज, कालंजर, कलचुरी व कहलूर किसी भी राज्य के इतिहास की वंशावली में चन्द्रवर्मा का नाम नहीं है। केवल शशिवंश विनोद में चन्द्र का उल्लेख प्रथम पुरुष के रूप में है। चन्द्रमा ब्रह्मा का पौत्र था। इला उसकी पत्नी।

ऐलदेव (चन्द्रमा) व विमला (चान्दनी) का रंगनाथ महादेव मन्दिर तीन हजार वर्ष पूर्व महाराज ऐलदेव ने चन्देल स्थापत्य कला के अनुसार बनाया था। उस समय तक राजा 'देव' उपनाम लिखते थे।

यूं कहलूर के चन्देल राजवंश की नींव महाभारत के खल पात्र महाराज शिशुपाल ने रखी तथा उनके पुत्र गोपाल से उस वंश की शाखा प्रारम्भ हुई। वह उनत्तालीसवां राजा था।

वैसे तो प्रथम राजा शिशुपाल के पिता राजा चन्द हुए, उन्हीं से कहलूर के ६२वें राजा के चन्द के पश्चात् इस वंश के राजा चन्द शब्द लगाते थे। कहलूर की स्थापना चन्देरी से आकर महाराज वीरचन्द ने की। अन्तिम राजा आनन्दचन्द हुए। वह एक सौ चौदहवें राजा थे। नाम घर राजा युवराज राजेन्द्र चन्द हुए। अन्तिम वंशधर कुंअर गोपालचन्द हैं।

वीर और शौर्यशाली राजाओं में वीरचन्द, श्रृंगारचन्द अभयसार चन्द, रत्न चन्द, कल्याण चन्द, दीप चन्द तथा भीम चन्द हुए। इन्होंने वीरत्व के बड़े-बड़े कारनामे किए। रानियों में पद्मावती, नागरदेई व सर्वोच्च रानी तृप्तादेई हुई जिसने अंग्रेज़ों से १८३९ में लोहा लिया। सेनापतियों में विष्णुचन्द, खुशहाल सिंह, अघड़दत्त, शिवदत्त राय, श्याम चन्द व जोरावर सिंह हुए।

कला साहित्य के नायक पुरुरवा, नहुष, ययाति यदु इसी वंश के राजा थे। महाराज देवी चन्द ने रसिक प्रिया व खड़गचन्द ने चन्द्र विलास लिखा। विजय चन्द हिन्दी प्रेमी राजा थे। उनके समय में कवि गणेश सिंह ने सोलह पुस्तकें लिखीं। सबसे विख्यात विद्वान, मद्यविरोधी, खादीप्रिय राजा, चीफ कमीशनर, सदस्य लोक सभा व विधान सभा अन्तिम महाराज आनन्द चन्द थे। इसी वंश के टिक्का कृष्ण चन्द बड़े विद्वान थे।

अन्तिम वंशधर गोपाल चन्द वर्तमान समय में इंगलैंड में हैं। निर्माण प्रिय राजाओं में राजा दीपचन्द ने १६५४ ई० में बिलासपुर नगर बसाया।

फिर खड्ग चन्द ने सांडू में अपना महल बनवाया। इसकी भव्य चित्रकारी देखते ही बनती थी। हीराचन्द ने महल व मन्दिर बनवाये। अमरचन्द ने धवल राजमहल, पुल, बाग, बावड़िया बनवाई तथा बन्दोबस्त किया। विजय चन्द ने फारसी के स्थान पर देवनागरी का प्रचलन किया, फिर कुछ समय तक कहलूर में रीजेन्सी कौंसिल ने शासन किया और सन् १९३२ से, ४८ तक राजा आनन्द चन्द रहे फिर भारत स्वाधीन हुआ और हिमाचल प्रदेश बना।

बिलासपुर में रामायण महाभारत कालीन सभ्यता सुन्हाणी-सीर खड्ड से लेकर ब्रह्मपुखर देवथ तक फैली थी।

१६५० से पूर्व कहलूर की राजधानी सुन्हाणी थी—राजा थे दीपचन्द। वह हनुमान के भक्त थे। सुन्हाणी शब्द का संधिच्छेद कीजिये ? सुन+हन+ली=सुन्दर हनुमन्तिका - नगरी। पास ही एक करगोड़ा स्थान है, वह कर्ण घोड़ा का अपभ्रंश है। वहां लगभग बारह फुट ऊंची हनुमान की मूर्ति है। कहते हैं इन्हीं हनुमान ने भीम को छकाया था। सुन्हाणी के पास सीर खड्ड बहती है। सीर क्षीर का अपभ्रंश है। भगेड़, राजा भगीरथ की ओर संकेत करती है फिर चांदपुर (शत्रुघ्नपुर) भरतपुर, लक्ष्मणपुर, रघुनाथपुर, सीता (सीतला का मन्दिर) सब रामायण कालीन सभ्यता को दर्शाते हैं।

भगेड़ से आगे आती है—सतलुज नदी। इसके चार नाम कहे गए हैं— पुष्पभद्रा, शतद्रुम, शतद्रु तथा सतलुज। यह वौहट कसोल से बिलासपुर में प्रवेश करती है। वौहट कसोल, वहु किलोल का अपभ्रंश है तथा कन्दरौर कुन्ती रौख या कुन्ती पुर का। यहां से पाण्डवकालीन सभ्यता के अवशेष आरम्भ होते है। बिलासपुर में पाण्डव अज्ञातवास में कितने दिन रहे होंगे यह तो मालूम नहीं, परन्तु अवशेष बताते हैं कि बहुत समय रहे।

पौराणिक काल से सतलुज को पुष्पभद्रा, शतद्रुम या शतद्रु कहते थे। दूसरी अली (अमृत नीर) तीसरी चम्पावती, चौथी गम्भर (गम्भीर) पांचवी गंभरोला। यह पांच नदियों का संगम जहां इकठ्ठा होता था, वही भगवान् श्री कृष्ण का निवास या मुरली मनोहर है। पंजपिपलू (पचंवृक्ष), भी पांडवों ने लगाए थे।

यह सारा प्रदेश त्रिगतान्तर्गत आता था परन्तु अधिकार पांडवों का था। भले ही त्रिगर्त का राजा सुशर्म चन्द दुर्योधन का साथी था। यह क्षेत्र सतलुज के किनारे वरमाणा से लेकर दानोघाट तक फैला था।

एक का अधिपति भीम का पुत्र घटोत्कच था, दूसरे का अर्जुन का पुत्र बर्बरीक। घटोत्कच प्रथम दुर्गेश्वर था जिसका अपभ्रंश बाद में डोगरा बना। सतलुज नदी वौहट कसोल से प्रवेश करती है वौहट कसोल वहु किलोल का अपभ्रंश है। सलापड़ (शिलापुर) वरमाणा (भ्रमण हेतु) है, जमथल (यमस्थली) की कल्पना है। देवली (देवधुली) का अपभ्रंश है। पंजगाई तो पांडवों

के पांच ग्राम थे ही। सोलग सोलह ऋषियों के रहने का स्थान था। चमलोग में चर्म वस्त्र-धारी शिष्य रहते थे। रानी कोटला कुन्ती व द्रौपदी का कोट था, वहीं रानी की बावली भी है। छकोह (यक्ष कोट) का अपभ्रंश है। वाडनू वरु वृक्षों का समूह है। बठोह (बैठो) विश्राम स्थल है।

अब घाघस से चलते हैं। घाघस गदाहस्त देव (भीम) की स्मृति है। आगे ठौरु युधिष्ठर को दर्शाता है। मंगरोट पाकशाला थी। सन्धोली, सैरेन्ध्री (द्रौपदी) की याद है। संगराणा (शार्गंधराणा) अर्जुन है। सायर (सहदेव) निहारखण वासला (नकुल क्षणवास) है। द्रोवड़ (द्रोणबल) गसौड (गोशाला) जुखाला (यज्ञशाला), पंजैतण (पंचायतन्) झण्डा (ध्वजा वेदिका), मार्कण्डेय, इन्द्रद्युम्न, वटी कृष्ण, रोहिणी इत्यादि सब महाभारतकालीन हैं। आगे ब्रह्मा का स्थान ब्रह्मपुष्कर है देवथ देवरथ (स्वर्ग की कल्पना) है। दाणो घाट दुर्योधन घाट अथवा दानव का घाट है। वहां शिला पर टिकी शिला दुर्योधन और भीम के मलयुद्ध का प्रतीक है। इसे म्यूंगलोला कहते हैं।

घाघस से इस ओर बनौला (वन), बागी (बाग), सुन्गल (सुन्दर), वामटा (वाम ऋषि नारद का स्थान) है। अब आता है नगर बिलासपुर जो पहले ब्यासपुर के नाम से जाना जाता था। ब्यास गुफा व पाड़ का गणेश मन्दिर सर्व प्रसिद्ध है। खनेसर (षण्मुखेश्वर) कार्तिकेय का मन्दिर यौधेय कालीन है। ब्यास गुफा के नीचे महामाया बिहार है। दीप चन्द ने बिलासपुर बसाया था पहले ताराशाह जहरी बावा का स्थान था फिर पांच मन्दिरों की श्रृंखला थी। सीतला (सीता), रंगनाथ (महादेव), विष्णु दो मन्दिर भैरव (श्यामचन्द) व रानी तृप्तादेई के टिक्का कृष्ण चन्द ने बनाए। दीप चन्द के साथ का दूसरा फकीर गोहर में खाकीशाह की मजार में रहता था। तीसरा हनुमान सांडू में, चौथा बलीराम वृजभूषण में। पंचरुखी पांडव निर्मित थी। छोटा हरिद्वार व ऋषिकेश भी उन्होंने बनाया। सर्व प्राचीन मन्दिर त्रिपुर भैरवी का शाक्त मन्दिर है जो धौलरा के पीछे है।

ब्यासपुर बिलासपुर बना और फिर न्यू टाऊन। चंगर चरागाह को कहते हैं। डयारा दर्रा का अपभ्रंश है। कुसरियां में राजाओं के बजीरों की कोठरियां थीं। रौड़ा (औड़ा-अन्न भण्डार) का अपभ्रंश है। अनन्तपुर और कार्तिकेयपुर यौधेयकालीन हैं। दोनों राजा बिलासपुर ने गुरु रामराय को दिये तथा अब आनन्दपुर और कीरतपुर के नाम से जाने जाते हैं। सबसे विचित्र कठपौल का टिब्बा है। यह कंठ पाल का अपभ्रंश है। यहां बर्बरीक का कटा शीश रखा था। मेरा विचार और शोध यहीं तक है। आगे विदु-जन जानें।

नोट : ये विचार लेखक के हैं। सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं। —सम्पादक

१५-१६। सैक्टर-१,
बिलासपुर, हि. प्र. १७४००१

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सीबा रियासत

□ डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा

पश्चिमी हिमालय के लगभग २०-२२ राज्यों में कांगड़ा का प्रमुख स्थान रहा है। इसके उत्थान पतन की एक लम्बी कहानी है। कांगड़ा के प्राचीनतम राजवंशों में कटोच राजवंश का नाम मिलता है। इस कटोच-राज्य का मूल स्थान कांगड़ा था, किन्तु गुलेर जसवां, सीबा और दातारपुर आदि इलाकों का भी वही शासक था। बाद में इन इलाकों ने स्वतन्त्र रूप में अपना विकास किया। जिस तरह गुलेर इलाका कांगड़ा से अलग हुआ है उसी तरह गुलेर रियासत से अलग सीबा रियासत का आविर्भाव हुआ। सात सौ वर्ष पूर्व राजा हरिचन्द से चार पीढ़ियों के पश्चात् उस समय के रईस का छोटा भाई सिबाण चन्द व्यास नदी के दक्षिणी क्षेत्र का स्वतन्त्र राजा बन गया और उसने अपने नाम पर ही अपनी राजधानी का नाम 'सीबा' रखा। उस समय से लेकर आज तक इस इलाके की सीमाएं वही हैं।

गुलेर के राजा भूपसिंह ने सन् १८०८ में यह राज्य राजा गोविन्द सिंह और उसके भाई देवी सिंह से छीन लिया। इसके दस वर्ष बाद महाराजा रणजीत सिंह ने यह क्षेत्र राजा गुलेर से लेकर सन् १८३० में गोविन्द को वापिस दे दिया। कांगड़ा की सभी छोटी-छोटी रियासतों में केवल रियासती सीबा ही सिक्खों के प्रतापशाली युग में उनके पंजे से बची रही थी। यद्यपि एक बार राजा ने इसे विनष्ट कर देने का विचार कर लिया था, मगर इस राजवंश की दो लड़कियां महाराजा के मंत्री ध्यान चन्द से व्याही गई थीं, अतः यहां का राजा विनाश से बचा तो रहा, मगर फिर भी इसको अपने बड़े किले से हाथ धोने पड़े और महाराजा को१५०० रुपये वार्षिक कर देना पड़ा।

यह क्षेत्र राजा और उसके चचेरे भाइयों में विभक्त हो गया और उसके अन्तर्गत बीस हज़ार रुपये की आय का क्षेत्र राजा को और कोटला क्षेत्र देवी सिंह को बिना किसी शर्त के दिया गया। देवी सिंह की मृत्यु हो जाने पर महाराजा ने पुनः इस क्षेत्र को विभक्त किया और गोविन्द सिंह के पास केवल पन्द्रह हज़ार का क्षेत्र इस शर्त पर रहने दिया कि वह अपनी आय का दो तिहाई भाग फुटकर सेना में खर्च करें।

सन् १८४५ में राजा गोविन्द सिंह चल बसा और उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र बना। सिक्खों की लड़ाई में रामसिंह करदाता होने के कारण एक सौ आदमियों के साथ सिक्ख सेना में शामिल हुआ। फिर विजय सिंह ने अपने चचेरे भाई पर इस विचार से चढ़ाई कर दी कि जो क्षेत्र महा-राजा ने उसके पास रहने दिया है उसे छीन ले। विजयसिंह अपने उद्देश्य को पाने में सफल हुआ, मगर कुछ समय के पश्चात् अंग्रेजी सरकार ने वह क्षेत्र उसे फिर वापिस कर दिया और इन दोनों चचेरे भाइयों को अपनी-अपनी जागीर पर बहाल कर दिया। जो क्षेत्र राम सिंह के भाग में आये उनकी वार्षिक आय चौदह हज़ार दो सौ रुपये थी। पन्द्रह सौ रुपये वार्षिक लगान पर इसे और इसकी नर सन्तान को सदा के लिए निर्वाहार्थ दिए गए। विजय सिंह को चार हज़ार आठ सौ रुपये वार्षिक आय वाले छः गांव इस शर्त पर दिए गए कि इसकी मृत्यु पर उत्तराधिकार के नियमानुसार इसके उत्तराधिकारियों में विभक्त होंगे, मगर सन् १८४८ में कटोचों के विद्रोह में शामिल होकर इसने अपने अधिकार समाप्त कर लिए तथा इसका भाग ज़ब्त हो गया। नौ वर्ष के बाद इसके छोटे भाई गुलाब सिंह की स्वामिभक्ति एवं मित्रतापूर्ण सेवा के बदले यह जागीर वापस दी गई।

गुलाब सिंह जम्मू राज्य की एक रेजिमेण्ट का कमान अधिकारी था। १८५७ के विद्रोह के समय उक्त रेजिमेण्ट को दिल्ली भेजा गया, वहां इसने श्रेष्ठ सेवा की। महाराजा जम्मू की व्यक्तिगत सिफारिश पर यह जागीर बहाल हुई थी। महाराजा जम्मू और विजय सिंह में वैवाहिक सम्बन्ध थे। विद्रोह में राजा रामसिंह ने अपनी स्वामिभक्ति का प्रमाण दिया। यह निःसन्तान था, अतः इसने दत्तक पुत्र लेने की स्वीकृति की प्रार्थना की परन्तु सरकार ने उसे स्वीकृति नहीं दी। १८७४ में जब रामसिंह का निधन हुआ तब उसके निकट सम्बन्धी विजय सिंह को यह जागीर दी गई। इस जागीर का पन्द्रह सौ रुपये वार्षिक लगान पर इसकी उत्तराधिकारी नर सन्तान को भी सदा के लिए दिया जाना मान लिया गया। जागीरदार पर यह शर्त लागू थी कि वह अपने भाई गुलाब सिंह और भतीजे कर्म सिंह को तीन हज़ार रुपया वार्षिक गुजारा दिया करे। सन १८७८ में इसको राजा की उपाधि दी गई। अगले वर्ष इसके निधन पर उक्त शर्तों पर जागीर उसके बेटे जय सिंह के नाम कर दी गई। इसको भी राजा की उपाधि दी गई।

राजा रामसिंह के निधन पर सीबा जागीर का सरसरी बन्दोबस्त हुआ और बीस हज़ार रुपये की आय निर्धारित हुई। ज़मींदार के अधिकार यथावत रहे और भूमि सम्बंधी अधिकार भी वही रहे, जो आला मालिक के होते हैं। अब जागीरदार की कुल आय का अनुमान ३२०००/- रुपये हो गया। बीस हज़ार जागीर सीबा और पांच हज़ार कोटला की जागीर से और शेष विभिन्न साधनों से आता रहा। सीबा और कोटला की जागीरों में ४२ मौज़े (गांव) थे। इनकी सीमाओं के अन्दर राजा जयसिंह को न्याय सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे। इनकी बहन का विवाह स्वर्गीय महाराजा रणवीर सिंह से हुआ था जम्मू काश्मीर के स्वामी महा

राजा सर प्रताप सिंह, राजा रामसिंह तथा राजा अमरसिंह उसी के पुत्र थे। राजा जय सिंह की रानी बिलासपुर के राजवंश से थी। पुंछ के स्वामी राजा मोतीसिंह का विवाह इसी वंश में हुआ था। मियां कर्म सिंह के पुत्रों को सात सौ बीस रुपया मासिक प्रति व्यक्ति के हिसाब से रियासत जम्मू से मिलता था। वायसराय के दरबार में कांगड़ा के राजाओं में मियां निहाल सिंह का तीसरा स्थान था। इस रियासत में मियां निहाल सिंह का वंश श्रेष्ठ समझा जाता था और वह राजा साहब का निकटस्थ था। मियां सिंह का लड़का जमीयत सिंह राजा साहब का पार्षद था। डाडा सीबा रियासत कांगड़ा की एक महत्वपूर्ण रिरासत रही।

अध्यक्ष,
यशपाल साहित्य परिषद्,
नादौन, जिला हमीरपुर, हि. प्र.
१७७०३३

धूपदान अष्ट धातु (200 वर्ष) मृकुला मन्दिर लाहुल

हिमाचली लोक गीतों में लामण गायन शैली

□ डॉ० सुरजीत सिंह पटियाल

पर्वतों के राजा पश्चिमी हिमालय की गोद में पलने वाले आऊटर सिराज और बुशैहर क्षेत्र प्रकृति के रमणीय रंग स्थल हैं। उच्च धवल पर्वत शिखर, गिरिकन्दराएं, हरे-भरे जंगल, सुन्दर सरिताएं और सुन्दर सीढ़ीदार खेत इन भू-भागों में प्राकृतिक सुषमा का आपार भण्डार बिखेरते हैं। हिमालय की ये लाडली घाटियां देवों, ऋषि मुनियों, साधु-संतों, सिद्धों, योगियों और साधकों की तपो भूमि रही है।

देवराज शर्मा के शब्दों में संसार के कोलाहल से सुदूर, यातायात के साधनों से वंचित, सुरम्य घाटियों के भीतर प्रकृति की गोद में सरल क्रीड़ा मग्न, पुराणों एंव गाथाओं से परिवेष्टित, देवी- देवताओं में आसक्त देव भूमि की संज्ञा से विदित इन क्षेत्रों के निवासियों ने अपनी उच्च भावनाओं, महान विचारों और नैसर्गिक उदगारों को लोक नृत्यों, लोक गीतों तथा लोक कथाओं आदि में अभिव्यक्ति दी है[1]। जब हरी-भरी पहाड़ियों पर यहां के युवक व युवतियां अपने मधुर कण्ठ से रस लेकर नृत्य करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे साक्षात श्री भगवान कृष्ण ग्वालों के संग अपनी मधुर बांसुरी बजा-बजाकर चतन प्राणियों को मन्त्र-मुग्ध कर रहे हों।

इन घाटियों में आरम्भ से ही लोक गीतों की एक समृद्ध परम्परा रही है। जिनमें लामण गीत अपने भाव-प्राचुर्य और लयात्मक गुणों के कारण अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। लामण लोक गीतों का मुख्य विषय प्रणय है तथा इन गीतों में वर्णित नायक का नाम रिलू है और नायिका का नाम नाणी। लामण लोक गीतों की निष्पति घर आंगन से दूर प्रकृति के साफ वातावरण में हुई है। प्रकृति के चहेते पहाड़ी लोग जब अपनी दिन-चर्या पर निकलते हैं तो प्रकृति की दृश्यावली को देखकर वे भाव-विभोर हो जाते हैं और सहज ही उनकी अन्तर आत्मा गा उठती है। लामण गीतों को गाने का उपयुक्त स्थान खुले खेत और जंगल ही हैं। खेतों, खलियानों और घाटियों में जब लोक गायक लामण गीत की पक्तियां गाते हुए एक हाथ कान पर रखता है और दूसरे को आगे की और फैलाता है तो उसकी इस मुद्रा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वह प्रकृति

१. शर्मा देवराज, हिमाचल श, अतीत-वर्तमान-भविष्य, किरन बुक डिपो बिलासपुर (हि० प्र०) १९७५ पृष्ठ-१५५

को अपने गायन में सम्मिलित होने के लिए आमन्त्रित कर रहा हो ।

श्रमिक, गडरिये और ग्वाले लोग जब अपनी दिन चर्या को पूर्ण करते हुए थकान महसूस करते हैं तो वे अपनी थकान को दूर करने के लिए लामण गीत की पंक्तियों को लम्बी टेर के साथ गाते हैं। उनके द्वारा गाई गई पंक्तियों के उत्तर में कहीं दूर काम कर रही युवती, नाणी (नायिका) की तरफ से गाये जाने वाले लामण गीत की पंक्तियां गा देती है । ये दोनों एक दूसरे से अपरिचित होते हुए भी एक लय में बन्धे होते हैं । इस प्रकार लामण गीतों का यह ताल-मेल चला रहता है ।

लामण लोक गीतों का पूर्ण अध्ययन के पश्चात् गवेषक ने पाया कि लामण लोक गीतों की अपनी कुछ विशेषतायें है जो साधारणतः अन्य लोक गीतों में नहीं पाई जाती । जैसे :—

1. लामण गीत श्रृंगार रस प्रधान होते हैं और इनका मुख्य विषय प्रणय है ।
2. इन गीतों की रचना द्वी पदी मुक्तों में हुई होती है । जैसे :-

   तेरी तँईं नाणियें कूड़ू नाऊं तहसीलै,
   लागी कौरे पैसैं, बिका कौरे घोरा री शीलैं ।

3. लामण गीतों में नृत्य और संगीत का अभाव होता है तथा ये वाद्य मुक्त गीत होते हैं ।
4. इन गीतों के गायन के लिए एकान्त और खुला वातावरण उपयुक्त होता है ।
5. एकल गेयता, इन गीतों को एक समय में केवल एक ही व्यक्ति गाता है ।
6. साधारणतः रिलू (नायक) की तरफ से गाये जाने वाले लामण गीत पुरुष अथवा लड़के गाते हैं और नाणी (नायिका) की तरफ से गाये जाने वाले लामण गीत स्त्रियां अथवा लड़कियां ।
7. लामण लोक गीतों में प्रश्नोत्तरी प्रणाली लक्षित होती है अर्थात् नायक प्रश्न करता है और नायिका उत्तर देती है और कभी नायिका प्रश्न करती है और नायक उत्तर देता है ।
8. लामण गीत गाने की एक विशेष शैली होती है । ये गीत लम्बी टेर के साथ गाए जाते है । जैसे :—

   बाता री कुइयैं हौरी फूली फूलैं भरोरैं,
   जेती हुई लो बौडाड़ी, नाई गई लो लोगुए घौरैं ।

स्वर लिपि :-

सा — सा सा — गम प — ध — — धप पम मग ग — — —
बा ऽ ता ऽ री ऽ कुऽ ईऽ यैं ऽ ऽ हौ ऽ री ऽ फू ऽ ली ऽ ऽ ऽ
मप ध — —, ध-- धप पम, मग ग — — ग — — —
फू ऽ लैं ऽ ऽ, भ ऽ ऽ रो ऽ, रैं ऽ, जे ऽ ती ऽ ऽ हु ऽ ऽ ऽ
गम पम मग ग — — ग स — — — — — —
ई ऽ लो ऽ बौऽ डा ऽ ऽ ड़ी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

म — म — मग ग — — — — मप — पम

नी ऽ ऽ ई ऽ ऽ ग ऽ ई ऽ ऽ ऽ ऽ लो ऽ ऽ ऽ लो ऽ

मग ग — — — — ग — ग — — — — — —

गुऽ ए ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ घो ऽ रे ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

लामण लोक गीतों के संग्रह के विषय में सामान्य लोगों का विचार है कि इस प्रकार के लोक गीतों का प्रकाशन नहीं होना चाहिए और न ही इस प्रकार के गीतों का पुस्तक रूप में संग्रह होना चाहिए क्योंकि इन लोक गीतों के कुछ प्रकारों में ऐसी घटनाओं को वर्णित किया गया है जिनमें नग्न प्यार के स्पष्ट दर्शन होते हैं, यही नहीं कुछ लामण गीत तो ऐसे हैं, जिनमें मांसल प्रेम का वर्णन बड़े स्पष्ट शब्दों में किया गया है। सामाजिक मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए नैतिक दृष्टि से इस प्रकार के गीतों का संग्रह करना उचित नहीं होगा।

इसमें दो राय नहीं कि लामण लोक गीतों में नग्न प्यार का वर्णन होता है और यह भी सच्च है कि कुछ गीतों में मांसल प्रेम का वर्णन बड़े स्पष्ट शब्दों में किया गया है लेकिन ये गीत लामण लोक गीतों का एक पक्ष मात्र है क्योंकि लामण लोक गीतों की एक बहुत बड़ी श्रृंखला है जिन की विषय वस्तु केवल प्रणय ही नहीं वरन इसके अन्तर्गत ऐसे गीत भी प्रचलित हैं जिनमें भक्ति रस परिलक्षित होता है। जैसे :

धारा गाय देवीयै तेरो जौ देऊरी ऊंचो,
नोटी दैऊंगै छेलाटू, मेरो कौरी लै मौना रो सूंचों।

भावानुवाद :— हे देवी मां तेरा यह विशाल काय भव्य मन्दिर ऊंचे पहाड़ पर स्थित है। तू यदि मेरी मनोकामना पूर्ण कर दे तो मैं तेरे चरणों में दो बकरों की बलि चढ़ाऊंगा।

इसके अतिरिक्त व्यवहारिक जीवन में घटने वाली अन्य घटनाओं का वर्णन भी इन लोक गीतों में मिलता है। जैसे :

खौड़ी कुवाइयै कीलै लागौ मूर्खा रौन्दौ,
लिखौ हेरे न टौड़दौ, सूंचौ न मौना रो हौन्दौ।

भावानुवाद :- हे मूर्ख तू जीवन में आने वाली समस्याओं का सामना करने से क्यों घबरा रहा है क्योंकि जीवन तो एक नैया के समान है और सुख-दुख दो किनारे। अगर आज दुःख है तो कल सुख होगा। विधाता ने जो भाग्य में लिखा है उसे कोई नहीं टाल सकता अर्थात् होनी बलवान है। मनुष्य की कई मनोकामनायें होती हैं लेकिन वे सब सम्पूर्ण हो जाए यह आवश्यक नहीं।

लामण लोक गीतों की व्यापकता, भावप्राचुर्यता, लयात्मक गुण और लोक प्रियता को देखते हुए गवेषक का विचार है कि अगर इन लामण लोक गीतों के केवल एक पक्ष को, जिसमें नग्न प्रेम

और मांसल प्रेम का वर्णन है, आधार मान कर हम इन लोक गीतों का संग्रह न करें तो यह न्याय संगत नहीं होगा और हिमाचली लोक गीतों के संग्रह में इन लोक प्रिय लामण लोक गीतों को स्थान न देना लोक संगीत के अध्ययन के साथ अन्याय करना होगा।

लामण लोक गीतों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं : -

आऊटर सिराज क्षेत्र में प्रचलित लामण लोक गीतों के कुछ प्रकार :—

1. नायिका :- आगाली नान्दी पाछली कौरदी ठेकौ,
सौबी लागौ बेरदौ, सौबी लागौ घौरा रो छेकौ।

भावानुवाद :- नायिका, नायक से रास्ते में चलते हुए कहती है कि तू क्यों आगे-आगे चल रहा है। सभी को देर हो रही है और सभी लोगों को घर पहुंचने की जल्दी है अर्थात् तू भी हमारे साथ-साथ चल।

2. नायक :- तौमे ती नाणियें जोड़ा बाइये जोका,
आपू फिरा चौतुरा, दूजे हेरे बणाऊंदी बोका।

भावानुवाद : नायक, नायिका से कहता है कि तुम्हारा क्या विश्वास तुम तो पानी में रहने वाली जोंक के समान हो। तुम अपने आप को चतुर बनती हो और दूसरों को बुद्धू समझती हो।

3. नायक :- सीया मारा झौपटी पाजै मारे मारा दोरे घेरै,
ऐणों पूछगै नाणियै कोले नाणों तेरै।

भावानुवाद :- नायक, नायिका से प्रश्न करता है कि नाणी (नायिका) तू किसके साथ विवाह करेगी।

4. नायिका :- नाणो तौ तौएंलै हेरु तेरो घौरौ रूकौ,
भौलै घौरौ तू गाभारु कैया बोला झौरियैं शुकौ।

भावानुवाद :- नायिका उत्तर देती है कि विवाह तो मुझे तुझ से ही करना है, लेकिन मैं तुझ से एक बात पूछना चाहती हूं कि तू एक भले और सम्पन्न घर का लड़का है जहां किसी भी चीज़ की कमी नहीं, लेकिन फिर तू किस सोच में कमजोर होता जा रहा है।

5. नायक :- न शुकौ झौरियैं न शुको तेरे झरेरै,
बुरै तेरे बूंदाणू, सानकै न छाडदै डेरै,

भावानुवाद :- मेरे कमज़ोर होने का एक मात्र कारण है कि तेरे घर वाले बुरे लोग हैं वे मुझे तुझ से मिलने के लिए अपने घर में नहीं छोड़ते।

6. नायक :- बाता री कुइयै हौरी फूली फूलै भरौरै,
जेती हुई बौडाड़ी, नाई गई लोगुए घौरै।

भावानुवाद :- नायक, नायिका से कहता है कि अभी तो तूने जवानी में कदम रखा ही था, कि तेरे घर वालों ने तेरा विवाह करके तुझे ससुराल भेज दिया

7· नायिका :- ईजीये लीलाकी बापूए गुडारी बेली,
काठै दिनी शाऊरै, मेरै न बौणी तौ झेली ।

भावानुवाद :- मैं मां की लाडली और पिता की प्यारी बेटी थी । लेकिन उन्होंने मुझे ऐसे ससुराल भेज दिया है जहां का जीवन बहुत कठिन है । मैं ससुराल के इस कठिन जीवन को झेल नहीं पाऊंगी ।

8. नायक :- दौं लागी चिलका काण्डै दी चौकै मोरा,
म्हारी पाई गै बिसरा थारै हुऐ गौरतै होरा ।

भावानुवाद :- सुबह का समय है, चारों तरफ धूप लग गई है और पहाड़ों की चोटियों से मोर का स्वर सुनाई दे रहा है । नायक, नायिका से कहता है कि तुमने हमें भुला दिया है, लगता है तुम्हें कोई और प्यारा हो गया है ।

9. नायिका :- ना पाई बिसरा न बड़ाऊयै गौरतै होरा,
तौमा जै सौंगणू भित्ती दी लाणै मोरा ।

भावानुवाद :- नायिका, नायक से कहती है कि ये तुम्हारा गलत विचार है । हमने न तुम्हें भूलाया है और न ही हमको कोई और प्यारा हुआ है ।

10. नायक :- तेरो मेरो नाणियै लौडाड़ी बेरा को साथा,
शादी कौरे नाणियै, ऐकी खामै थाड़िये भाता ।

भावानुवाद :- नायक, नायिका से कहता है कि हे नाणी तू मुझ से ही विवाह करना। विवाह के पश्चात् हम एक ही थाली में भोजन करेंगे ।

11. नायिका :- बाते बताणुआ बाता दी कौरे रुवानी,
खौड़ी चाके छौतरी मूं हेरु तेरे जवानी ।

भावानुवाद :- नायक रास्ते में छाता लेकर अपनी मंजिल की ओर जा रहा है । उसको देखकर नायिका कहती हैं कि हे रास्ते में चल रहे राही, थोड़ा इधर-उधर भी देख । अपने छाते को थोड़ा ऊपर उठा मैं तेरा यौवन देखना चाहती हूं ।

12. नायक :- हामैं नाणियैं ऐकी साकोडिये जायै,
साथी लोड़ी री मौरुऔ, एकी लोड़ी हेड़ियै जायै ।

भावानुवाद :- नायक, नायिका से कहता है कि हे नाणी तेरा मेरा जन्म एक ही समय पर हुआ है भगवान करे हमें एक बार ही मौत आये और हमें एक ही चित्ता पर जलाया जाये ।

आऊटर सिराज और बुशैहर क्षेत्र में लगभग एक जैसे लामण गीत प्रचलित है अन्तर है तो केवल उनमें प्रयुक्त बोली का, क्योंकि इन दोनों क्षेत्रों की बोलियों में थोड़ी बहुत भिन्नता है जब कि दोनों क्षेत्रों में प्रचलित लामण गीतों के भाव और गायन विधि एक समान है।

पोस्ट डॉक्ट्रेट फैलो,
हि० प्र० विश्वविद्यालय, शिमला १७१००५

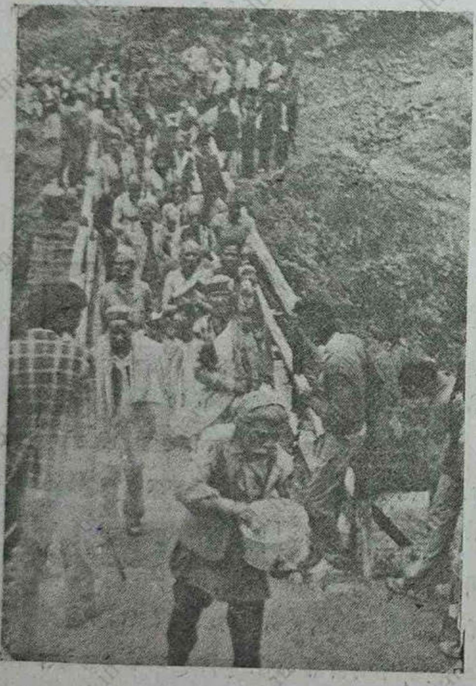

'शिखफेर' के समग्र दुरात्माओं को आटे की भेंट

क्या जालन्धर नाथ हिमाचली थे?

□ डॉ० वेद प्रकाश अग्नि

भारतीय धर्म साधना एक क्रियात्मक विज्ञानधन साधना-क्रम की विशाल प्रक्रिया रही है। इस विज्ञानधन की मूल-भित्ति पर समस्त भारतीय धर्म साधना खड़ी है। देश-काल के अनुरूप जहां एक ओर इस धर्म साधना में कई प्रकार की पूजा-पद्धतियों, आचार-विचारों का सन्निवेश हुआ है वहां दूसरी ओर उसकी मूल विज्ञान-धन-पद्धति आवरणित होती भी चली गई है। इसलिए नाना क्षेत्रों और सोच-विचार के कोणों से उसकी आलोचना-प्रत्यालोचना भी होती आई है। यों तो आलोचना का लक्ष्य सत्य की स्थापना और तथ्यों की छौणी में छिपे सत्य की भावधारा का मार्मिक उद्‌घाटन हुआ करता है। परन्तु कई बार धन और यश की मात्र लालसा से उत्प्रेरित लोग भी धार्मिक साधनाओं के सत्य का अधकचरा विमर्श करने पर उतारू हो जाते हैं तब धार्मिक विज्ञानधन का सत्य ऐसे महापंडितों की जान को रोने लगता है जिनका प्रश्न चिह्नित सूझ-बूझ इस क्षेत्र में अनर्थकारी युगान्तर उपस्थित कर डालती हैं तब साधना मनीषियों के खून से सने इन तथाकथित हत्यारे विद्वानों के पंकिल व्यामोह को हटाने की आवश्यकता प्रतीत होती है। यहां लक्ष्य करने का विषय यह है कि बावजूद ऐसे घिनौने प्रयत्नों के भी सत्य अपने मूल केन्द्र-बिन्दु में अपनी घनी-भूत शक्ति को संजोए रखता है। आचार और पद्धतियां, देशकाल भेद से, उस क्षरण शील शक्ति की पुनरपि उपलब्धि तथा उसके संरक्षण की सीमा-भूमियां हुआ करती हैं जिनके द्वारा मनुष्य निज को शक्ति केन्द्र या शक्तिमान के साथ जोड़कर धर्म की वास्तविक चैतन्यता को प्राप्त कर कृत कृत्य हो जाता है।

योग-साधना, विशेषतया हठयोग साधना, भारतीय साधना का एक अद्‌भुत सोपान है जिसे योगीश्वर गुरु गोरक्षनाथ ने लोक-हिताए स्वयं अनुभव में निकष पर खरा ठोस उतार कर प्रचारित किया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि एक समय इस देश में ऐसा भी रहा है जब तिब्बत से मलाया तक, ईरान की सीमाओं से दूर तटवर्ती भारतीय सिन्धु सीमाओं तक नाथ सम्प्रदाय और गोरक्षनाथ की योग साधना का बोल वाला था। आचार्य शंकर और बुद्ध के पश्चात् इस प्रकार का शक्तिशाली व्यक्तित्व अन्यत्र मिलना दुर्लभ है जिसने एकाकी बिना राज सहायता के जन-जीवन को इतना प्रभावित किया हो। महात्मा बुद्ध के पीछे राजबल था और साथ ही तत्कालीन राजाओं का संत्रास भी कि कहीं बुद्ध चक्रवर्ती सम्राट न बन बैठें और उनकी लुटिया डुबो दे, इस लिए

तत्कालीन भारतीय राजा, सम्राट बुद्ध के अनुयायी व समर्थक भी और उनकी लोक-प्रियता के सहयागी भी बने। इससे आपके आम और गुठलियों के दाम के अनुसार उन्होंने अपनी राजसी महत्वाकांक्षा की पूर्ति भी की और धार्मिक फुललाभ की तृप्ति भी प्राप्त की। इस प्रकार की कोई दुविधा और असुविधा गुरु गोरक्षनाथ को नहीं थी। उन्होंने अपने साधना बल से अनुभूत सत्य के द्वारा ही लोक हृदय को जीता था तथा जब भारतीय धर्म साधना के क्षेत्र में एक प्रकार की अराजकता की स्थिति पैदा हो गई थी। पूंगापंथी धर्माचार्यो द्वारा, जिनका संकेत ऊपर हो चुका है, धर्म के वास्तविक विज्ञान धन आधार का लोप किया जा रहा था और अपना-अपना उल्लू सीधा करने के प्रयत्न जारी थे उस दशा में महायोगी गोरक्षनाथ ने धर्म के सच्चे मार्ग को प्रशस्त किया तथा उसे युग की अपेक्षाओं के अनुरूप दिशा बोध दिया। यही कारण रहा कि वह न केवल भारत अपितु नेपाल, तिब्बत आदि में लोक प्रिय हुए। उनके गुरु मत्समेन्द्रनाथ या रमण-वज्र आज भी अवलोकितेश्वर के रूप में तिब्बती-साधना में देवतुल्य पूजे जाते हैं।

गोरक्षनाथ शैव योगी थे। हिमाचल प्रदेश शैव-शाक्त उपासना प्रधान प्रदेश रहा है। उत्तराखण्ड में अवस्थित यह प्रदेश न जाने कब से नाना मनीषियों की तपोभूमि रहा है। भारतीय जन-जीवन और सोच-विचार पर अपनी अमिट छाप छोड़ने वाले, चिरंजीवी मार्कण्डेय ऋषि से लेकर वेदव्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, अगस्त, भृंगी, आंगिरस, बृहस्पति तथा शुक्राचार्य जैसे दिग्गजों ने इसी पवित्र भूमि पर तपस्या कर जीवन के सारस्वत सत्यों का अनुभव किया और बाद में उन्हें लोक-कल्याण की दृष्टि उपदिष्ट किया। इसीलिए अत्यन्त प्राचीन काल से हिमाचल भूमि देव-भूमि के नाम से विख्यात हुई। तपस्वियों की इसी परंपरा में गोरक्षनाथ और उनके सम्प्रदाय का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। कुछ विद्वानों का तो यहां तक अनुमान है कि नाथ-सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोरक्षनाथ भरमौर या ब्रह्मपुर के रहने वाले थे, या कम से कम वह स्थल उनका साधना क्षेत्र रहा है। भरमौर में चौरासी सिद्धों का क्षेत्र एक बात को तो जरूर इंगित करता है कि गोरक्षनाथ भले ही यहां के हों या नहीं किन्तु नाथ-सिद्धों की तपोभूमि का श्रेय भरमौर को दिए बिना नहीं बनता। इस बात की पुष्टि इससे भी होती है कि गोरक्षनाथ के गुरुभाई चर्पटनाथ की तपस्थली तो भरमौर ही अधिकतर रही है। चर्पटनाथ के आदेश पर ही तत्कालीन भरमौर के राजा साहिल वर्मन ने रावी तक क्षेत्र जीत कर भरमौर में मिलाया था तथा रियासत चम्बा की बुनियाद डाली थी। चम्बा के पुराने सिक्के टिकली या तिकली पर अंकित योगी चर्पटनाथ की मुद्रा वस्तुतः गुरु के प्रति आकण्ठ कृतज्ञता का ही तो परिचय देती है।

भरमौर के अतिरिक्त दूसरा बड़ा महत्वपूर्ण केन्द्र था जालन्धर पीठ जहां नाथ शैव योगियों ने शैव-शक्ति साधना के चरम बिन्दु का विकास उपलब्ध किया। जालन्धर-पीठ का इतिहास बड़ी गंभीर गवेषणा की अपेक्षा रखता है। इन पंक्तियों के लेखक ने इस दिशा में मात्र बैजनाथ क्षेत्र में पड़ने वाले पल्लिकेश्वर, मुकुटनाथ तथा महाकाल पर विहंगम दृष्टि से विचार प्रस्तुत किया है। जालन्धर पीठ में चार क्षेत्र अपने-अपने में संपूर्ण इतिहास रखते हैं। महाकाल और बैजनाथ की

भूमि, महाकालेश्वर (लोक में क्लेसर नाम से प्रसिद्ध) भूमि, कश्यपेश्वर की सावित्री स्थली तथा श्री ज्वालामुखी की भूमि । श्री ज्वालामुखी में जालन्धर योगियों के घराने से भ्रष्ट हुए तीन सौ चौंसठ गृहस्थ गोसांइयों के मट्ठ थे । गोसांई गृहस्थ योगी माने गये हैं तथा शैव मंदिरों में पुजारी रूप में स्वीकृत भी रहे हैं । लोक में कभी यह 'गुसांटे' नाम से अनादर भागी थे, क्योंकि योगी का गृहस्थ प्रवेश लोक में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था । श्री ज्वालाजी के ३६४ गोसांई मट्ठों पर से एक बात सिद्ध है कि किसी समय जालन्धर पीठ का यह क्षेत्र योग साधना की तपोभूमि रही है । नागार्जुन का स्थान इसी का परिचायक है । गोरखडिब्बी इसी इतिहास से जुड़ी हुई है । इलाचीगिर की योग सिद्धियों की चर्चा आज भी लोक में प्रचलित है । बालुग्लो के गृहस्थ योगी तांत्रिक मूलनाथ (लोक में मूलोपाधा) को लोग अभी भूले नहीं हैं जिन्होंने कलकत्ता दक्षिणेश्वर की यात्रा में डाकुओं से उत्पीड़ित साधुओं की आर्त्त वाणी सुनकर हौड़ा और हुगली के बीच के तत्कालीन रेलवे फ्लैगस्टेशन पर अपने शिष्यों पुरोहित मैया भूरू आदि सहित अपने योगबल से खूंखार डाकुओं को डकैती छोड़ कर नेक कमाई से जीवन निर्वाह करने पर लगाया था और साधुओं की समस्या हल की थी । ऐसे कितने ही योग निष्णान्त साधक यहां हुए हैं जिनकी चर्चा फिर कभी की जाएगी । इन योगियों के इतिहास जहां नागार्जुन का नाम रसेश्वर सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध है । उन्होंने रसायन शास्त्र के सत्यों का उद्घाटन कर रस पद्धति का आविष्कार किया । 'पारद' के प्रयोग के वे संभवतः सबसे पहले आविष्कारक थे । इसीलिए श्री ज्वालाजी के अनन्यतम भूले-बिसरे योगीश्वर सिद्धों में जालन्धर नाथ का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है । वे जालन्धर बन्ध के आविष्कारक थे ।

'जालन्धर बन्ध' क्या होता है, यह जान लेना आवश्यक है । योग साधना में उड्डीयान बन्ध मूल बन्ध तथा जालन्धर बन्ध का बड़ा धनात्मक रोल है । इससे योगी इडा-पिंगला में गतिमान प्राण प्रवाह को रोक कर सुषुम्णा में प्रवाहित करने में समर्थ होता । सारी योग-साधनाओं का लक्ष्य मध्य नाड़ी या सुषुम्णा से प्राणों को प्रवाहित करना है । यही बौद्ध योगियों का मध्य मार्ग है जिसका गुण गाते वे थकते नहीं हैं । वस्तुतः सुषुम्णा में प्राण-प्रवाह का अर्थ है प्राण को संसार में विचरण से खींच कर दिव्य लोकों में विचरण करने में सक्षम बनाना । यही अर्ध्वगति का पथ है जब कि इड़ा-पिंगला में प्राण-प्रवाह संसार गति या अधोगति है । अधोगति से अर्ध्व गीत में ले जाना ही योग का लक्ष्य है । जालन्धर बन्ध एक प्रकार से इस लक्ष्य तक ले जाने वाला अमोघ साधन है । इसमें कण्ठ को सिकोड़कर ठोडी को दृढ़ता पूर्वक कण्ठकूप में इस प्रकार स्थापित किया जाता है जिससे हृदय से ठोडी का अन्तर केवल चार अंगुल रहता है, सीना आगे की ओर तना रखना चाहिए । यह बन्ध कण्ठ स्थान के नाड़ी जाल समूह को बान्धे रखता है । इससे इड़ा-पिंगला नाड़ियों में प्राण प्रवाह बन्द हो जाता है और सुषुम्णा में बहने लगता है । इससे कण्ठ के रोग नहीं होते । गला मधुर और सुरीला हो जाता है । इस प्रकार जालन्धर नाथ ने जालन्धर बन्ध की प्रक्रिया द्वारा अभ्यास पूर्वक हठी प्राणों को भी सुषुम्णा नाड़ी में प्रवाहित करने की अद्भुत विधि का आविष्कार किया । कहना कठिन है कितने ही उस समय के जालन्धर पीठ के

साधकों ने इस विधि का उपयोग साधना जगत में अपने मनोरथों को सिद्ध किया होगा। यह वही जालन्धर नाथ थे जिन्होंने गुरुगोरक्षनाथ को उनके गुरु पराचेन्द्र नाथ के बंगाल में उलझाने पर मुक्त कराने का सुझाव दिया था। यहां पर इतना और कह देना प्रांसगिक लगता है कि जालान्धर बन्ध द्वारा से सतत प्राण के सुषुम्णा नाड़ी में प्रवाहित होते रहने पर ही उस शिवांश ज्येष्ठा शक्ति का उत्स्फुरण होता जो शिव से समरस होती है। इस दशा की अनुभूति होने पर योगी को भौतिक जगत् और दिव्यजगत् की क्षिस्टक्षर्धमिता का सम्यक अवबोध होने लगता है। वह वास्तविकता के अधिक निकटस्थ बोध-व्यापार के कारण संशय आदि विकल्प पैदा करने वाली भ्रांतियों से मुक्त हो जाता है। उसका चित्त निर्मल तथा मन प्रफुल्ल हो जाता है।

जालन्धर बन्ध के प्रणेता जालन्धरनाथ तन्त्र विधान सम्पन्न परम सिद्ध थे। आज भी नाथ सम्प्रदाय में प्रायः तथा नाथ निष्ठा सम्पन्न घरों में साधारणतया जालन्धरनाथ के स्तोत्रों और मंन्त्रों को लोग जपते और पढ़ते हैं तथा मन्त्रों की पूजा करते हैं। नाथ सम्प्रदाय के ग्रन्थों में स्पष्ट इंगित किया गया हैं कि यह जालन्धरनाथ त्रिगर्त प्रदेश के सुप्रसिद्ध क्षेत्र जालन्धर पीठ में पैदा हुए। घर में शैव परम्परा होने के कारण इनका नाम जालन्धरनाथ रखा गया। आज भी काश्मीरी शैवों में शिवनाथ, इन्द्रनाथ, शंभुनाथ, कैलाशनाथ आदि नाम मिलते हैं। लोक कथाएं भी इसका समर्थन करती हैं। योगीसम्प्रदाय विष्कृति, ग्रन्थ की जो प्रति हस्तिनापुर राज घराने के राजा वृहद्रथ के पुस्तकालय से उपलब्ध हुई है उससे ज़ाहिर है कि ज्वालेन्द्रनाथ नाम का साधक जालन्धर पीठ में तप करता था। वह जालन्धरनाथ के नाम से प्रसिद्ध था। परन्तु नाथ सम्प्रदाय की गोरक्षसंहिता की पाण्डुलिपियों के साक्ष्य से विदित होता है कि यह साक्षात् महाकाल की गेहिनी आदि शक्ति के पुत्र थे। सम्पूर्ण हिमाचल में महाकाल के दो ही स्थान हैं। एक कांगड़ा का गुप्तगंगा तीर्थ को जाते हुए कांगड़ा मंदिर रोड़ के समीप का स्थान कहा जाता है कि इसकी प्रतिष्ठा भूपाल नरेश ने निस्सन्तानत्वदूर कराने के उद्देश्य से कराई थी जिसमें पुरोहित पूर्णाहुति से पहले सर्प दंशन का शिकार हो गया था। यह स्थान वैसे भी उतना प्रसिद्ध नहीं है। कांगड़ा व्रजेश्वरी पीठ के सार्वभौम स्वरूप की पूर्ति का अनुषंग सा प्रतीत होता है, किन्तु बैजनाथ से सात किलोमीटर दूर जालन्धर पीठ का सुप्रसिद्ध स्थान महाकाल निःसन्देह अत्यन्त प्राचीन स्थान है जहां भृंगी ऋषि घोर तप कर महाकाल में समा गये थे। स्वयं साक्षात महादेव जालन्धर पीठ में मुकुट नाथ से लेकर गंगानाथ तक ग्यारह रुद्रों की स्थापना की थी उनमें महापुण्य प्रद और घोर पाप-क्षयकारी महाकाल दिव्य स्थान रहा है। इसी महा काल के किसी तपस्वी घराने से जालन्धर नाथ का संबंध रहा हो तो यह अधिक संगत लगता है। कहा गया है...

साक्षान्महाकाल गेहिन्या आदि शक्तेः पुत्रोऽयमुक्तः।

इस विषय में और भी कहा गया है—

सर्पकञ्चुकवद्देहं त्यक्त्वा त्यक्त्वा पुनर्युवा।
सा सदैव युवा तिष्ठेत सभयाविषयीकृतः॥

कादि-विद्या के प्रकरण में भी इनके विलक्षण श्री विग्रह का उल्लेख मिलता है। इसके तेज पुञ्ज भीमाकार देह से समस्त मायावरण निस्टत होता है। इनके नेत्र ताम्र वर्ण के तथा केशराशि घनी पिंगवर्ण की थी। कानों में कुण्डल तथा रुद्राक्ष की माला धारण करते थे। शरीर पर भस्म रमाएं रहते थे।

इससे स्पष्ट है कि जालन्धरनाथ महाकाल के रहने वाले होंगे। उन्होंने ज्वालामुखी को अपनी साधना स्थली बनाया होगा क्योंकि सुप्रसिद्ध शाक्त ग्रंथ तन्त्र महार्णव में नवनाथों की निवास भूमि के प्रसंग में स्पष्ट इंगित किया गया है—

जालन्धरो वसेन्नित्यमुत्तरा पथ माश्रितः
ज्वालामुखी पञ्चकोशावनमुत्तर माश्रितः ॥

कहना न होगा कि श्री ज्वालामुखी पीठ जालन्धर पीठ का सुप्रसिद्ध पीठ है। जालन्धरनाथ ने यहीं पर ही अपनी साधना की थी। शैव शाक्त तांत्रिकों के विश्वास के अनुसार यह सिद्ध आज भी श्री ज्वालामुखी पञ्चकोशीवन में निवास करते हैं। मत्स्यन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ के पश्चात् यही एक मात्र सर्वोपरि प्रसिद्ध नाथ योगी महात्मा हैं जो हिमाचल की गरिमा थे।

अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
धर्मशाला (हि० प्र०)

चम्बा की बसोआ परम्परा

□ प्रेम शर्मा

बैशाखी भारत में अनेक ऐतिहासिक, प्राकृतिक, पारम्परिक और साम्प्रदायिक सद्भावना के सूत्रों से बंधा दिवस है। इस दिन देश के विभिन्न भागों में विभिन्न भावनाओं से ओत-प्रोत हो कर देशवासी हर्षोल्लासित हुए परस्पर नाचते, गाते, बजाते तथा पावन सरोवरों, नदियों, कुण्डों में स्नान करके कलुषित भावनाओं का नाश हो जाना तथा पुण्यार्जन मानते हैं। कहीं ऋतुराज और नव वर्ष का संगम मुख्य रहता है, कहीं देश भक्तों के परम-पावन बलिदान की स्मृति उभर-उभर कर सामने आती है। एक ओर कृषि परिश्रम के मधुर परिणाम का हर्षातिरेक, तो दूसरी ओर समुद्र मंथन वाली पौराणिक कथा के आधार पर अमृतप्राप्ति की चिरन्तन भावना का उल्लास। इधर मन्दिरों, गुरुद्वारों, मठों, आश्रमों आदि में भजन, कीर्तन, लंगर तो उधर भाषण, व्याख्यान, उपदेश एवं प्रवचन। सम्पूर्ण वातावरण में मन मुकुल के विकसित हो जाने की महक भर जाती है।

इस दिन के विषय में हिमाचल के ज़िला चम्बा में एक दूसरे प्रकार की भी भावना घर बनाए हुए है, जिस के अनुसार ससुराल से बहिनों, बेटियों को बुलाकर सम्मान एवं प्यार पूर्वक खिलाने पिलाने की विशेष परम्परा वर्तमान है। अपने पैतृक नगर, गांव, गली, कूचों में खेली-कूदी बहिनें, बेटियां, स्नेहार्द्र होकर परस्पर गले मिलती, खाती, खिलाती, नाचती गाती हुई परम प्रसन्नता मनाती हैं। अड़ोस-पड़ोस के सब लोग उन बहिनों, बेटियों को अपने घर बुलाते और उन की रुचि अनुकूल भोजन कराते हैं। दूध या पानी में गुड़ घोल कर जिसे गुड़ाणी कहा जाता है, के साथ विशेष प्रकार की पिन्नियां खिलाने की मुख्य परम्परा है। ये पिन्नियां कोदे का आटा पका, खमीर डाल कर तैयार की जाती हैं और बैशाखी के एक दिन पूर्व पत्तों की, विशेष कर, अखरोट के पत्तों की तहों में रखी जाती हैं। ऐसा इसलिए कि, ये दूसरे दिन तक खमीरी बन जाती हैं। इन पिन्नियों को चम्बयाली में पिंदड़ी कहा जाता है तथा बैशाखी को पिंदड़ियों का त्यौहार। क्योंकि पैत्तिक ऋतु के आगमन पर पित्त सम्बन्धी दोषों से त्राण पाने के लिये इस प्रकार की पिन्नियों के खाने खिलाने में आयुर्वेदिक महत्व समझा जाता है तथा आने वाली पैत्तिक ऋतु में कम व्ययी, सरल और सुखद उपचार माना जाता है। यदि कारण विशेष से किसी को कोई बुला नहीं पाता या कोई लड़की पीहर नहीं आ सकती तब पिंदड़ी आदि

उस के घर पहुंचाना आवश्यक रहता है । न पहुंचाने पर बहिनें, बेटियां अपने प्रति अवहेलना मानकर रुष्ट हो जाया करती हैं ।

अतीत की प्रतीति

लगता है इस परम्परा का अतीत उस समय से जुड़ा हुआ है जब मनुष्य ने सामाजिक जीवन के महत्व को समझा था तथा अपने अड़ोस-पड़ोस की बहिनों, बेटियों को भी अपनी बहिन, बेटी की तरह स्नेह और प्यार देकर ममता का सूत्र गांठा था । इन बहिनों, बेटियों को स्थानीय बोली में धियाणें कहा जाता है जो पंजाबी धी (बेटी) शब्द का बहुवचन रूप है । ऐसी भावना के प्रतीक बैशाखी को चम्बा में बिस्सू या बसोआ कहा जाता है, सम्भवतः इस लिये कि सूर्य १२ राशियों में भ्रमण करके इस दिन पुनः मेष राशि में प्रवेश करता है और इस प्रवेश काल को विषुवत् काल कहा जाता है । नव बर्ष का आरम्भ होने से शुभ कामनाओं का आदान-प्रदान होता है । इसके साथ-साथ विष्णु प्रीतिघट दान करने की भी परम्परा है । जल से भर कर मिठाई, फल पुष्प, दक्षिणा रख कर दान करके नया घड़ा ब्राह्मणों को दिया जाता या किसी छबील पर रखा जाता है । इस प्रतीति में एक ओर जहां नारी जाति का सम्मान, प्रतिष्ठा, गरिमा निहित है, नव वर्ष के लिये शुभ कामनाएं हैं. वहां वात्सल्य, स्नेह, बन्धुता और ममता भी भरी पड़ी है । मुस्कराते आना, भरी आखों जाना समागम-आगम की अनुभूति को साकार बना देना है । दूसरी ओर आगामी ग्रीष्म काल के लिये शीतल जलपूर्ण घटादि दान से निजी हित में पुण्यार्जन का चिन्तन भी पाया जाता है ।

ग्रामीण क्षेत्रों में एक दूसरी भावना से भी इस त्यौहार को मुख्यता दी जाती है । क्योंकि ज़िला का भू-भाग दो हजार फुट से २१ हजार फुट तक समुद्र तल से ऊंचा है अतः बीजी गई फसल पकने लगती है और बीजी जाने वाली फसल के लिये भूमि तैयार करनी पड़ती है । इसलिए दो तीन मास की कार्य व्यस्तता हो जाने एवं इतने दिनों में जीवन से कुछ भी हो जाने के भय से बिस्सू के दिनों में बहिनों, बेटियों को बुलाकर खाने-खिलाने एवं मिल-जुल कर खुशियां मना लेने की परम्पर ा प्रचलित हो गई है ।

१०वीं शताब्दी के बाद बिस्सू के समय अन्य अह्लादि गीत गौण बनते गए और घुरेही गीत मुख्य बनते गए । ये घुरेही गीत बिस्सू के शुभागमन की प्रतीक्षा में चैत मास के प्रथम सप्ताह से ही आरम्भ कर दिये जाते हैं । अपने-अपने गांव में नारियां इकट्ठी होकर प्रति दिन एक या दो बार इन गीतों को गाती और नाचती हैं । इस प्रथा को स्थानीय लोग डंगी पाणा कहा करते हैं ।

घुरेही

घुरेही संस्कृत के "गृहस्य" रूप का अपभ्रंशित शब्द है । यह विकृत रूप चम्बयाली में घुरेही (घर की) अर्थात् ऐसी घरेलू बातें जो मनमुटाव वाली होती हैं, जिन्हें विशेष विश्वस्त व्यक्ति से,

कोई सुन न ले, इसलिये बहुत धीरे-धीरे घुर-घुराई ध्वनि में कही जाती हैं, घुरेही कहा जाता है। किसी पूर्ण विश्वस्त के अभाव में कभी अपने ही मन में वे बातें गुनगुनाई जाती हैं। वही गुन-गुनाहट धीरे-धीरे गीत रूप में जब परिणत हो उठी और घुरेही गीत कहलाने लगे। कुछ समय तक इन गीतों का विषय घर की चार दीवारी ही बना रहा परन्तु जैसे-जैसे समय बढ़ता गया विषयान्तर ग्राही भी बनते चले गए और आज ऐतिहासिक, समाजिक, चरित्रात्मक आदि अनेक घटनाओं में घिरे भी सुने जाते हैं। उपालम्भ और आशाओं के क्षेत्र में अंकुरित ये गीत प्रशंसात्मक कवि शैली में भी फूलने-फलने लग पड़े हैं। प्रकृति की उपासना तो इनके प्रारम्भिक संस्कार हैं ही। रोष और उपालम्भ की एक बानगी प्रस्तुत है :—

ढक्कियां चढ़दी बो सुन्दरु छंबे-छंबे रौंदी हो
अनी मेरिये सुन्दरु लुहारिये।
होर तां धिया बो बापुए, नेड़े-नेड़े दित्तियां,
हऊं दित्ती बो बापुए रौआ दे पार हो।
होरना जो दित्ती बो बापुए सूहे-सूहे कपड़े,
मिंजो दित्ते बो बापुए काले-काले कपड़े।
होरना जो दिती बो बापुए तिलेदार जुत्तियां,
मिंजो दित्ते बो बापुए सादी-सादी जुत्तियां।
ढक्कियां चढ़दी बो सुन्दरु, छंबे-छंबे रौंदी हो।

छोटी-छोटी पहाड़ियों पर चढ़ती हुई सुन्दरु नामक बेटी छम-छम रोती हुई जा रही है और अपने पिता के प्रति रोष एवं उपालम्भ को कितने मार्मिक शब्दों द्वारा प्रकट कर रही हैं। मेरेपिता जी ने दूसरी बेटियों को तो समीप-समीप दे रखा है। मुझे ही रावी के पार अर्थात् दूर दे रखा है। औरों को तो लाल सूहे-सूहे वस्त्र और तिलेदार जुत्तियां दी हैं, मुझे काले कपड़े और सादी जुत्तियां दे रखी हैं। ऐसी बातों पर उसकी आखों में सावन, भादों उतर आए हैं।

इसी प्रकार ससुराल में बैठी बेटी बिस्सू को समीप आया देख स्वयं-स्वयं से बातें करती हुई गुन गुनाती गा उठी है : —

बिस्सू तां बिस्सू आया पंजे सत्ते
मेरा भाऊ सादा नी आया हो।
बिस्सू तां बिस्सू आया पंजे सत्ते
मेरा बापू सादा नी आया हो। (स्वयं को स्वयं उत्तर देती है)
अप्पू ईणा बो धीये अप्पू जाणा,
भाऊ तेरा है निक्का याणा हो।
अप्पू ईणा बो धीये अप्पू जाणा,
बापू तेरा है बृद्ध सियाणा हो। (सन्देश भेजती है)

पिंदड़ी ता पिंदड़ी भाऊआ अप्पू खाए,
पिंदड़ी दे पठ्टे देईं भेजे हो।
गुड़ ता गुड़ाणी भाऊआ अप्पू खाए,
गुड़े दा धुआणी देईं भेजे हो।

बिस्सू के दिनों में बुलाने के लिये भाई या पिता के न आने पर उदास एवं निराश हुई नारी विह्वल हो कर कह रही है :-

पांच-सात दिनों के बाद बैशाखी आने वाली है पर न भाई न ही पिता जी बुलाने आए हैं। पुनः स्वयं ही स्वयं को समझाती है बेटी, अपने आप ही आना जाना होगा क्योंकि भाई छोटा और पिता वृद्ध है। बुलाने कैसे आएंगे। पुनः कह उठती है भ्राता जी, पिंदड़ी स्वयं खा लेना जिन पत्तों में वे रखी होंगी उन पत्तों को ही दे भेजना। गुड़ और गुड़ाणी स्वयं खा-पी लेना पर गुड़ धोने का पानी ही दे भेजना।

कितनी लालसा भरी है एक बेटी की-पिंदडी एवं गुड़ाणी खाने-पीने में, कितनी विह्वलता है मायके जाकर भाई और माता-पिता से मिलने की। हतोत्साहित, निराशा, बैचेन, रुष्ट, नाराज़ क्या-क्या कहा जाए उस नारी की विवशता को? बैसाखी के पूर्व दिनों में एक ऐसा समय भी होता है जब परस्पर गाती नाचती सखियां प्राकृतिक बातों के माध्यम से नये-नये वस्त्र पाने की लालसा में उमंगित हुई बोल पड़ती हैं—

मेरिये सीकरिये, ओ धारे!
धारे जित्ते मरुआ-मुरारी फुले हो
मेरियो नगरे दीयो ओ कुड़ियो!
चिड़ियो तुसां फुल चुगणे जो ईये हो।
मेरिये धारे दीये तरेली?
बरेली, मेरे मोचड़ हो, हो सीजे हो
सिजदे सीजण दे पुराणें,
नौंए तिज्जो होर देला बणवाई हो।
मेरिये धारे दीये तरेली,
तरेली, मेरा सोथणु हो, हो सीजे हो।
भिजदा भीजण दे पुराणा,
नौंआ तिज्जो होर देला बणाईं हो।
मेरिये धारे दी तरेली।
तरेली मेरी घाघरी हो, हो सीजी हो
सिजदी सीजण दे पुराणी,
नौंईं तिज्जो होर देला बणाई हो आदि।

सिकरी नामक धार पर मरुआ-मुरारी फूले हुए हैं जिनको चुनने के लिए नगर की लड़कियों को बुलाया गया है। सिकरी धार पर पड़ी ओस से जुत्तियां और एक-एक वस्त्र का भीग जाना प्रकट किया जा रहा है। पुनः स्वयंमेव नये बनवाने का वादा भी किया गया है। क्योंकि भीगे हुए वस्त्र पुराने जो पड़ गये हैं।

इस प्रकार लड़कियों की विविध भावनाओं से भरा बिस्सू प्रतिवर्ष आया करता है चम्बा में। वैसे तो भारत में समय-समय पर अनेक ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि उत्सव, पर्व, त्यौहार और मेले मनाए जाते हैं, परस्पर आदान-प्रदान, खान-पान, मौज बहार होती है परन्तु चम्बा में बिस्सू, मिंजर दीपावली, लोहड़ी चार ऐसे दिन हैं जब धियाणों (बहिनों, बेटियों) को बड़े सम्मान पूर्वक अवश्यमेव बुलाया जाता और तत्कालीन ऋतु के अनुसार भक्ष्य, भोज्य दिया जाता है। कभी पिंदड़ी कभी तली हुई खमीरी रोटी (बबरू) तो कभी घी खिचड़ी।

इस प्रकार बैसाखी मनाने की चम्बा परम्परा में जो भाई बहिनों का स्नेह, बच्चियों का प्यार पिता, चाचा, फूफियों का वात्सल्य भरा पड़ा है उसके सामने दायाद्य पर होने वाली कलह के मुंह पर कालिख पुत जाती है और हो जाता है उसका देश निकाला।

जिला भाषा अधिकारी,
चम्बा, जिला चम्बा
हिमाचल प्रदेश

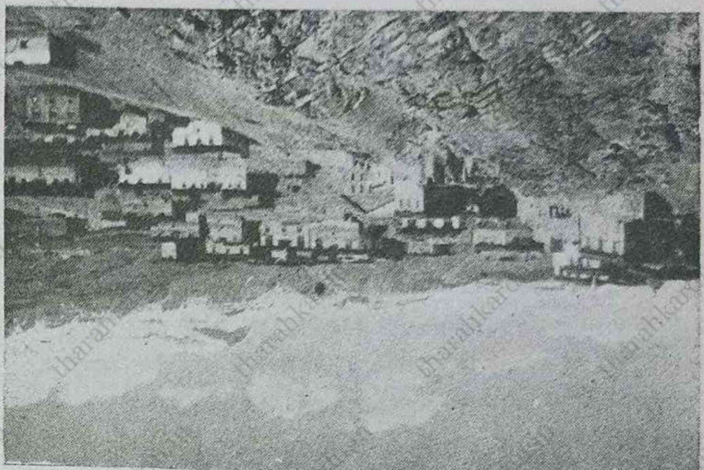

सड़क से जुड़ा हिमाचल का सर्वाधिक ऊंचाई (15000 फुट) पर बसा गांव किब्बर-स्पिति

(प्रकृति द्वारा निर्मित पर्वत शिखर दुर्ग-स्पिति घाटी)

tharahkardu.in

हिमाचल प्रदेश के जन समुदाय

हिमाचल प्रदेश के जनसमुदायों की एक अनन्तिम सूची भारतीय नृतत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा तैयार की गई है। उसे अन्तिमित करने के उद्देश्य से दिनांक 26-28 नवम्बर, 1987 को देहरादून में एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। नृतत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा एक बृहद योजना 'भारत के लोग' (People of India) पर कार्य किया जा रहा है। इस योजना के अन्तर्गत देश के प्रत्येक जनसमुदाय का सर्वेक्षण किया जाएगा। देहरादून में आयोजित कार्यशाला की अध्यक्षता भारतीय नृतत्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक डॉ० के० एस० सिंह ने की थी। प्रस्तुत सूची में हिमाचल प्रदेश के कुछ ऐसे जनसमुदायों को भी सम्मिलित किया गया है जिन पर अभी तक बहुत कम लिखा गया है। सम्भव है कुछ जन समुदाय इस सूची से छूट गए हों। पाठकों से इस सम्बन्ध में सोमसी में प्रकाशनार्थ सामग्री का स्वागत होगा।

—सम्पादक

1. अबदाल
2. अचारज
3. आद धर्मी
4. अहेरिया/तूरी
5. अरडपोपो
6. आर्य/डिगरा/डिगर
7. बाड़ी/बाढ़ी/ नगालू
8. बढ़ई/धीमान/तरखान/विश्वकर्मा/कौण्डल
9. ओड/बनाणी
10. बागड़िया
11 बाहती
12. बाजीगर
13. बाल्मीकि/भंगी/चूहड़ा/चूहड़े
14. बंगाली
15. बंजारा
16. बैंसी
17. बरड़
18. बैरागी/बिरागी/बरागी
19. बटेहड़ा/बटेड़ा
20. बटवाल/बरवाल
21. बेडा
22. हैन्सी/हेस्सी
23. भांजड़ा/भांजड़े
24. भड़भूंजा/भरभूंजा
25. भट्ट/भाटड़ा
26. भोजकी/पण्डा
27. भोट/बोध
28. ब्राह्मण (नगरकोटिया)/हलबाहा
29. चमार/रविदासी/रामदासी/मोची
30. चनाल
31. चन्देल (राजपूत)/कहलूरिया मीयां
32. छांग/चाहंग
33. छिम्बे/धोबी
34. दर्ज़ी/सोई/छिम्बा

35. डागी
36. दराई/दरयाई/दरेई/दरेइ/दरांई
37. दौले/दाउले
38. सरहाड़े/सरहाड़े
39. ढाकी/तूरी/बाजगी
40. धौगरी, धौगरी/सिग्गी
41. झीवर/झीउर/कहार/मल्लाह/कश्यप
42. दसाली/दौसाली/धसाली
43. डूम/डूमना/डूमने/महाशा
44. डुक्पा/ड्क्पा
45. फकीर
46. गद्दी (अनुसूचित जनजातियों के क्षेत्रों के अतिरिक्त)
47. गद्दी ब्राह्मण
48. गन्ढीला/गन्धीला/गन्दीला
49. गौड़ (ब्राह्मण)
50. गर्वारिया/गौरिया/गौड़िया
51. घाई/घसियारा/घासी
52. घिरथ/घेरिथ/चाहंग
53. गुलेरिया/गोलेरिया (राजपूत)
54. गोरखा
55. गोसांई/नाथ
56. गुज्जर (अनुसूचित जनजाति के अतिरिक्त)
57. हाडी
58. हाली
59. जाड
60. लाम्बा/लामा
61. खम्पा
62. जसवाल (राजपूत)
63. जाट/जट्ट
64. जोगी
65. जुलाहा/जुलाहे/कबीरपन्थी
66. डगोली
67. कोली
68. कनौरा/किन्नर
69. कनैत/कुनैत
70. कंधेरा/कन्गेहड़ा/कन्गैहड़ा
71. कटोच (राजपूत)
72. खटीक/कटीक
73. खतरी
74. खश
75. कुम्हार/प्रजापति/कम्हार
76. लबाणा
77. लाहुला
78. लोहार
79. मलाणी
80. मरासी/मिरासी
81. मज़हबी
82. मेघ
83. मेहर/महर/झीवर
84. नाई/हज्जाम/सहंस्त्रबुद्धिया
85. नड़
86. नट
87. ओड/मिस्त्री
88. पंगवाला ब्राह्मण
89. पठान (मुस्लिम)
90. पिंजा/सराहडा/सरैहड़ा/पेन्जा
91. ठाकुर (राजपूत)
92. राणा/राना
93. राठी
94. सन्हाई
95. संसी/भेड़कट
96. सरड़े/सराहड़े/सरेहड़े
97. सिकलीगर
98. सैनी
99. सिप्पी
100. सिरकीबन्द/समसी/संसी
101. सुनार/जरगर/टोंक/सोनी/स्वर्णकार
102. सुण्हाक
103. स्वांगला
104. तेली

105. ठठियार/ठठेरा
106. थावी/थावी
107. गुजराती(ब्राह्मण)
108. अमची
109. नचार
110. पंगवाला (राजपूत)
111. गद्दी राजपूत
112. सिबिए
113. पूर्विए/पूर्बी
114. रंगड़/रंघड़
115. राहू/राव
116. विद्दू/बेद्दू/बुझरु
117. पठानिया (राजपूत)
118. कम्बोज
119. गढ़िए
120. खून्द
121. ईसाई
122. सिक्ख
123. जो
124. शिङ् जोक्पा
125. वाज़ा (किन्नर)
126. नोनो
127. सिद्ध
128. भराई/भरयाई
129. फाण्डिया (मुसलमान)
130. साध
131. ढाकी
132. दयाल
133. पाबुच (ब्राह्मण)
134. भोट्ट (ब्राह्मण)
135. औरेस
136. नाग (ब्राह्मण)
137. बूचेन
138. दर्जी/सोई
139. जोतशी/जोदशी
140. लुड्डू (राजपूत)
141. पखरस (हरिजन)
142. परनोलिया
143. रेहड़/रेहाड़ा
144. सहहाई/सनयाल/सरनाली
145. सपेला/सपोलिया (राजपूत)
146 संसोई/सोई
147. नकेहड़ा

आठवीं छायाचित्र चल प्रदर्शनी के उद्घाटन अवसर पर माननीय शिक्षा मन्त्री (वरिष्ठ उपाध्यक्ष अकादमी) श्री सागर चन्द नैय्यर का आगमन

महेश्वर मन्दिर — थानंग, सुंगरा (किन्नौर) हि. प्र.
छाया: [illegible] चन्द शर्मा (भाषा-संस्कृति विभाग, हि. प्र.)

H.A.A.C.I.

पंन्जी- 28271/75

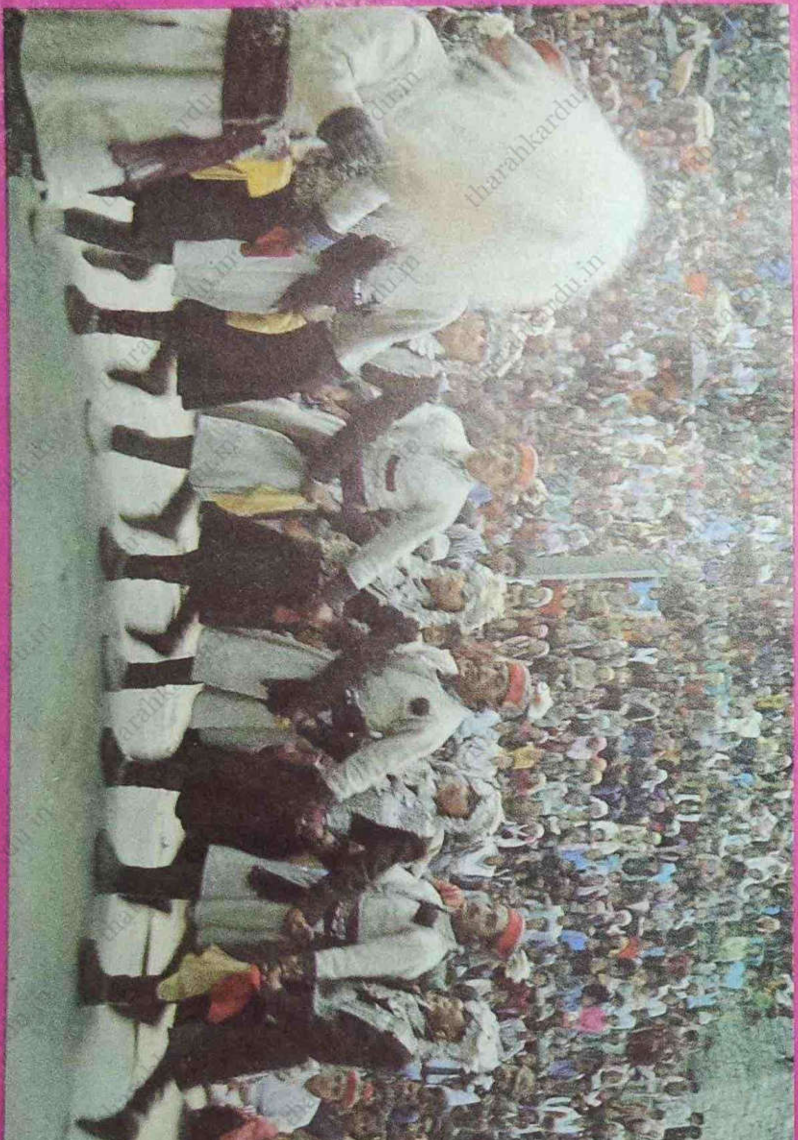

शिमला क्षेत्र का लोकनृत्य: नाटी,
छाया चित्र: हाकम चन्द शर्मा (भाषा- संस्कृति विभाग, हि. प्र.)

सचिव हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला द्वारा प्रकाशित तथा न्यूप्रिन्टस ग्रीन फील्ड कोटेज शिमला 171001 फोन नं. 6660, द्वारा मुद्रित